राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर के आर्थिक
सहयोग से प्रकाशित

आस्था के शिलालेख

श्रीगोपाल जैन

आस्था के शिलालेख

•

मूल्य साठ रूपये मात्र

प्रथम संस्करण फरवरी, 1995

कुल प्रकाशित प्रतियां एक हजार

मुख्य वितरक भारतीय ग्रन्थ संसद
लक्ष्मणगढ़ (सीकर)

•

मुद्रक श्रीकृष्ण प्रिन्टर्स
लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राज

ASTHA KE SHILALEKH (Poetry)
by SHREE GOPAL JAIN

बीज-गर्भ

मानव इतिहास की यात्रा अनेक पडावो, वृत्तो तथा विवृतो को पार कर आ पहुची है आज के अतरिक्ष युग तक।

आज का युग विक्षोभो का युग है। प्रलय के बिम्बो का युग है। अतहीन त्रासदिया, सवेदनाहीन होता मानव, टूटते अस्तित्व के स्तूप।

देहतत्र, व्यक्तितत्र, आदिमतत्र, जडतत्र, फालादतत्र और प्रलयतत्र जैसी मन स्थितियो से आक्रात है युगीन मानव।

इतिहास तो दिग्भ्रात रहा ही है किन्तु बौद्धिक प्रखरता का अभिमान करने वाला आज का युग भी अपवाद नही इस दिशाहारा अभिशाप से।

उद्वेलन, आवेग, विक्षोभ, सत्रास और कुण्ठा जैसी भाव स्थितियाँ आज के जटिल जीवन की प्रतिबिम्बित स्थितियाँ है।

मानव स्वभावत ही स्वाधीनता का वरण करने वाला, प्रामाणिक जीवन का चयन करने वाला तथा शिवमय जीवन और विश्व का वरण करने वाला होता है किन्तु व्यष्टि चेतना (Being) की सम्यक् समझ, प्रामाणिक विश्व की सरचना तथा सृष्टि सम्बन्धी सही समझ के अभाव मे साकार नही हो पाता उसका यह शाश्वत् स्वप्न।

व्यष्टि और समष्टि समसरस हो, दिशासूत्र निभ्रान्त हो तभी समवेत मानव समाज उल्लास और सृजना का सग बनकर अपनी क्षमताओ की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है।

आज के जटिल तत्र मे आस्थायें टूट चुकी है। नियति अनिश्चितताओ मे फसी है और जीवन त्रासदियो मे। आर्तमन मुक्ति चाहता है विक्षोभप्रद युग तथा तमसाक्रान्त आकाश से। धरती के अस्तित्व का सकट है, मानव अस्तित्व खतरे मे है और भविष्य त्रिशकु सा।

आस्था के शिलालेख की कविता यात्रा की यही पृष्ठभूमि है। विश्वास है काव्यकृति की कवितायें आपकी अन्तरगता के साथ सहस्पन्दित हो सकेंगी और मानवीय पक्षधरता का क्षितिज अधिक धवल और व्यापक।

— श्रीगोपाल जैन

मानव नियति के धवल स्वप्नो
तथा आगत शताब्दियो को
समर्पित ।

अनुक्रमणिका

मैं सृष्टि का अक्षय संगीत

बैठा हूँ मैं पद्मा के तट पर
कल-कल बहता पुण्य सलिला का जल
नदी के मध्य खिले हैं कमल के पुष्प
दूर तक देखता श्यामल प्रकृति का सुखकर रग
ताड, खजूर, कटहल और बासो के पेड
चम्पा की गध से सुवासित मन
भर देती है प्राण प्रकृति जीवन मे
आह्लादित हो जाता है मन का पौर पौर
चेतना हो जाती आत्म-निमग्न

फैल जाती भाव चेतना की दृष्टि
कर लेती स्पर्श दिगन्तो के
ब्रह्माण्डीय भाव चेतना का फैलता नभ
क्षुद्रताओ की कारा से होता मैं मुक्त
असीम ब्रह्माण्ड मे खोजता मेरा अस्तित्व
सृष्टि प्रक्रिया से गुम्फित प्राण
स्व और सृष्टि द्विआयामी अस्तित्व
जब होता मुझे स्व और सृष्टि का यथार्थ ज्ञान
होता तब अनुभव कि है स्व और सृष्टि अन्तत अद्वैत

अनन्त ब्रह्माण्ड का असीम विस्तार
सृष्टि प्रक्रिया से उत्सित मेरे प्राण
ब्रह्माण्डीय परिधि मे ही हूँ मैं अस्तित्ववान्
चेतना निरन्तर प्रवाहमान/बूंद-बूंद सा बहता मैं
क्षण क्षण को भोगता मैं
रचता हूँ मेरे अनुभवो के महासिन्धु का इतिहास
आभ्यन्तरता मे जीता/बाह्य विश्व में रहता

दिशा और काल मे चलता
करता हूँ सृजित मैं मेरा इतिहास

जीवन द्वन्द्वो मे घूर्णित मैं का अस्तित्व
सताप और विषाद मे डूबे प्राण
पराधीन नियति का मै अनस्तित्व भाव
जानता हूँ किन्तु मैं मेरे अस्तित्व का सत्य
मैं हूँ स्व की सत्ता और मुक्ति का भाव
मैं हूँ आनन्द ! स्व-सृष्टि का त्रैकालिक छद
नही झेल पाता इसीलिए तो अनस्तित्व भाव का दश
चाहता मेरे प्रतिपक्षी भाव विश्व से मुक्ति
चाहता मेरे आत्म कोष का अक्षय सगीत
तात्विक धरातल पर मैं शाश्वत मुक्ति
वही मेरा प्रतिरूप
उसी के रचता छद
मेरी अस्तित्व समग्रता की मैं अनुभूति
खण्डित भाव चेतना देती दश
मुक्ति ! मुक्ति उच्चारता स्व
अखण्डित मैं का होना चाहता प्रतिरूप
स्व की समग्रता मे जीना चाहता मन
किन्तु कहा इच्छित मन का लोक
मेरे भाव ससार तो है खण्डित
विश्व की दशा-दिशा दृष्टि से टकराता मन
नियति का खोजता पथ
है जहाँ बिम्बित मेरे अखण्डित मैं-बोध के बिम्ब

अनन्त ब्रह्माण्ड मे अस्तित्वान् है-
मैं, विश्व और दिक् काल
युग्मित हैं हम सबके अस्तित्व प्राण

बार-बार केन्द्रित हो जाते हैं मेरे भाव विचार
स्व और सृष्टि के प्रश्न पर
ये ही तो है वे मूल प्रश्न
केन्द्रित है जिस पर मेरा नियति कोण
खोजता मैं स्व का सत्य
ढूंढता मैं जीवन का अर्थ
सृष्टि सत्य का करता मैं विवेचन
रचता मैं जीवन दृष्टि के छंद

नहो उदघाटित हुआ है अभी सृष्टि का रहस्य
नही व्यक्त हुआ है अभी मैं-चेतना के अन्तस् का तल
जानने की प्रक्रिया मे हूँ मैं प्रज्ञा प्राण
बनने की प्रक्रिया मे हूँ मैं अस्तित्ववान्
बनना चाहता मै मेरे प्रामाणिक भावो का प्रतिमान
होना चाहता मै मेरी स्व दृष्टि का अपना ससार
आकाक्ष्य है मेरा अस्तित्व का स्वाधीन अस्तित्वनाद

रचता मैं मेरी कविता मे मैं का छद
गढता शब्दो से मेरी मूर्ति
विष के बीजो को कर देता अलग
प्राणमयी अमृत मे जीता मैं
मुक्ति का मैं शाश्वत उद्घोष

सृष्टि अनन्त विस्तार
स्व की प्रज्ञा आखें होती विराट्
क्षुद्रताओ और भेदो की सीमा से मैं मुक्त
खगोल, स्व और विश्व के त्रिकोण मे
अस्तित्व प्रज्ञा का जीवन्त मैं
यही मेरे मैं-भाव की ज्योमिति
यही मैं-अस्तित्व का केन्द्र

जीवन की पृष्ठभूमि पर खडा होकर देखता जब नभ
विश्व की परिधि मे चक्रित होकर देखता जब मैं आगत

होता प्रतीत तब आगत के समक्ष खडे हं सर्पिल प्रश्न
जीवन धधकता है जैसे हो महाज्वार
डूबता जाता है शून्य मे मेरा इतिहास
रक्षामि/रक्षामि / का करता मन्त्रोच्चार
अस्तित्व रक्षा के खोजता सूत्र
जीवन के सताप देते दश
महायन्त्रणा शिविर मे मै कैद

न यह मेरा काम्य/न यह मेरा आकांक्ष्य
है यह तो मुझ पर लादा गया त्रासदी का इतिहास
चाहता मैं त्रासदी से मुक्ति
खोजता अमृत भावो के पथ
विषाद से चाहता मुक्ति
चाहता हर मानव के अतस् मे
प्राणपोषी अमृत रस का सचार

जीवन की साध्यता ही मेरा धर्म
पर और स्व मे करता नही भेद
सवहित की प्रवाहमान अतस् की सलिला
तट कूलो पर नाचता प्रकृति का सौन्दर्य

मैं सृष्टिबोध की अक्षय दृष्टि
म अस्तित्व चेतना का शाश्वत नाद
म के मर्यों म में विराट्
अस्तित्ववान भव
खगोल / मे / मै सृष्टि का अक्षय सगीत।

मैं विराट् का बिम्ब

सागर का विस्तृत तट
लहरो का गतिमान अहर्निश चक्र
दूर-दूर तक निर्जन एकान्त
मन मे पैदा होते विचार अनन्त
महासिन्धु का फैलाव
लहरो का वेग काटते तैरते पोत
देखता मैं जहाजो की गति
ज्वारो को भेदकर कर जाते वे पार
मेरी नियति तो है ज्वाराक्रान्त
नही भेद पा रहा हूँ अभी चक्रवाती चक्रव्यूह
हताशा मे डूबा मैं
सोचता
चक्रवातो के समक्ष मैं
कितना पराधीन
टहलता कुछ कदम
गिनता लहरो की सख्या
कितनी बेतुकी क्रीडा
अनन्त लहरो को कैसे गणना कर सकता है
तट पर टहलता मेरा मन
बैठ जाता हूँ मैं फिर होकर निराश
सूय के अनन्त बिम्ब नाचते लहरो पर
थाम लेता हूँ मैं प्रकाश बिम्बो के हाथ
कल्पना का नभ हो जाता है असीम
सृष्टिव्यापी हो जाता है चेतना का बोध
निराशा हताशा से मुक्त होता मन
सृष्टि महाविराट् ब्रह्माण्डीय तरग का शाश्वत नृत्य
जीवन की लहरो पर प्रतिबिम्बित
अब मैं विराट् का बिम्ब ।

अमृत ब्रह्म

असीम नभ पर फैलती आखें
घूम जाता सृष्टि का परिदृश्य भाव चेतना के कोषा मे
अणु से महत् तक की करता मन यात्रा
खोजता मैं स्व और सृष्टि महत् का अर्थ
विस्तारित हो जाती मेरी भावभूमि
प्रस्थापित करता मैं मैं-मेरा अस्तित्व
अस्तित्व ही तो है मेरे प्राणो की पृष्ठभूमि
कितु कितनी खण्डित है आज
मन रहता अब उदास
निराशा मे डूबता मैं असहाय
हर क्षण पर फैला है कोई महादैत्य
अनुभूतियो मे सचारित है जग का विष
अमृत का खोजी म
पीता पर विष
टूट-टूट कर बिखर जाते मे-हिमगिरि के शिलाखण्ड
मे झेलता हूँ द्वन्द्वो के प्रहार
एक तरफ मेरे अस्तित्व की अक्षयता के स्वप्न
दूसरी तरफ जीवन मे विष सी चुभन
मेरे विपर्यायार्थी विश्व मे मै शून्य
नही झेल पाता हूँ मुझ पर होते शाश्वत प्रहार
नही सहन कर पाता हूँ विष का दश
मै और युग प्रक्रिया है प्रतिपक्षी से रूप
कैद हूँ म युग प्रक्रिया मे होकर अनस्तित्व
नही भगित होने दू गा मै मेरे दशन के स्वप्न
महाविराट् चेतना को त्याग कर क्या बनू मै क्षुद्र ?
खगोलीय सृष्टि चेतना का मै अमृत ब्रह्म !

अस्तित्व का सर्ग

मै मात्र मैं
अस्तित्व की दृष्टि और जीवन की सज्ञा
मै बोध की धरती पर फैलता ब्रह्माण्ड बोध
क्षुद्रता की टूटती काराये, सृष्टि प्रक्रिया से स्पदित होते प्राण
में-दृष्टि मे फैलता महाविराट् का बिम्ब
अनुभूति मे तैरता स्व और सृष्टि का महत
पर जीवन कितना तिक्त
चारो तरफ फैली है खाइया और दीवारें
भेदो से ग्रसित है विश्व का मन
टूटता मेरा स्वप्न/यथाथ कटुता का स्तूप
मेरी दृष्टि के समक्ष खडे है विश्व के प्रेत
क्यो नही टूटती भेदो की दीवारें और अत्याचारो के दुर्ग
मन से सम्पृक्त हो मन तो बने विश्व
एकात्मक भाव का स्वर्ग
मेरा शब्द ससार तो रचता स्व महत् के छद
त्रैकालिक भाव चेतना खोजती अस्तित्व का शाश्वत सत्य
साम्प्रता मे जीता हूँ मैं खण्डित भाव का बिम्ब
सवेदनाओ मे गुम्फित है स्व और सृष्टि का रूप
विराट् भाव का मैं लेता असीम के स्वप्न
अस्तित्व परिधि मे चक्रित मेरे प्राण
भावो मे भूचाल
कापता प्राणो का मेरूदण्ड
चक्रवातो मे घूर्णित जीवन
कहाँ मैं मुक्त
नही होता किन्तु मन हताश
मुक्ति के लिए करता शाश्वत सघर्ष
खोजता महाविराट् का पथ
लिखता शब्दो मे मैं-अस्तित्व का सर्ग

महातरंग का प्रतीक

परिभ्रमित प्रतीत्यमान जगत मन के चक्रो पर
घूमती है सृष्टि के साथ भावो की चेतना
प्रज्ञा दृष्टि की खुल जाती आख
करता विचार स्व पर, सृष्टि पर, अस्तित्व पर, नियति पर
सोचता मैं जीवन और यथार्थ की बात
मेरी विपर्यगत चेतना, मेरा अनुभूत प्रतिबिम्ब
अत्याचारो के प्रहारो से मैं शून्य
जीवन मात्र वेदना की गाथा
खण्डित अस्तित्व की मैं भगित लय
स्वप्नो का ससार होगा कब साकार
कब होगा मानवाकार विराट् का भाव
लघुता की सीमा मे घुटते प्राण
प्रताडित चेतना मे उफनते ज्वार
दार्शनिक दृष्टि से देखता मैं स्वप्न
होते नही क्यो वे विश्व मे साकार
स्व की परिधि मे मैं स्व ब्रह्म
सृष्टि अनन्त अणुओ की महारास
जीवन स्व प्रक्रिया का आत्मरूप
इच्छाओ से गतित जीवन का चक्र
मायावी सा प्रतीत होता विश्व का क्रम
जीवन मात्र जीवनेच्छा
शान्ति, प्रेम, प्रगति और आन्तरिक लय
मेरे अभिप्रेत
विश्व के महामगल भाव की मेरी दृष्टि
महाबोध तत्व का मैं अस्तित्व
जीवन दृष्टि मे पलते असीम से स्वप्न
मैं की आस्था मे हूँ मैं ब्रह्माण्डीय महातरग का प्रतीक ।

मैं का प्रतिबिम्ब

मैं नही जानता मैं-बोध के अतिरिक्त हूँ भी क्या
मैं हूँ अस्तित्व भाव चेतना के प्राण
मैं ही मेरी विषयीगतता, मैं ही मेरा विषय
सश्लेषण-विश्लेषण की प्रक्रिया से रचता मैं मेरा प्रतीक
मैं-अस्तित्व बोध मे मैं महासृष्टि का छद
किन्तु जीवन तो शाश्वत सघर्ष
सृष्टि बोध को भूलकर हो गया मानव क्षुद्र
अस्मिता हो गई सकीर्ण परिधि मे कैद
विराट् भाव की दृष्टि हो गई ससीम
विश्व खडा समक्ष होकर मेरा प्रतिलोम
सत्य की दृष्टि दिग्भ्रमो मे कैद
न स्व और सृष्टि का सम्यक् ज्ञान
न अस्तित्व की चेतना, न आत्मलय का गीत
खुरदरी तपती धरती पर खण्डित मन की लय
जीवन मात्र अभिशप्त चेतना का प्रतीक
द्वन्द्व/सघर्ष/भगित स्व की लय
खण्डित जीवन मे कहाँ मैं-व्यष्टि समग्र का भाव
टूटती हिमशिलाओ सा मन का बोध
विश्व के नभ पर प्रेतो के पदाघात
मृत्युजयी भाव चेतना अब निरूपाय
शून्य मे विचरता प्राणो का सग
आत्मघाती विश्व प्रक्रिया से मैं अभिशप्त
जीवन के खोजता पथ, अमृत और आनन्द का देखता स्वप्न
अमृतशोषी प्रेतो से मेरा सघर्ष
—मैं मात्र आनन्दखोजी प्राण
ससीम और असीम का मैं अद्वैत भाव
भेदो मे है जो अभेद वही मैं का प्रतिबिम्ब।

विश्व का मंगल छंद

पीछे पसरा है एक दीघ अतीत
सामने फैला है एक अन्धा भविष्य
अपारदर्शी सा प्रतीत होता है सृष्टि का गर्भ
अतीत-आगत के मध्य मैं जीवन चेतना का साम्प्रत क्षण

कभी नकारता हूँ मैं अपने को
कभी नकारता हूँ मै-निषेधी विश्व को
कभी प्रतीत होता है मैं हूँ शून्य
जब हो जाता है मुझे मेरे अस्तित्व का ज्ञान
तब स्वीकारता हूँ मैं मेरा अस्तित्व
रचता हूँ फिर नियति के स्वर्णिम स्वप्न

निषेध, स्वीकृति और कल्पना के मध्य जीता हूँ मैं
– झूलता है मेरा समग्र अस्तित्व
स्व-बोध की दृष्टि से देखता जीवन और सृष्टि का अथ
आत्मभाव की प्रक्रिया मे जीना चाहता मैं
अस्तित्व परिधि को चाहता करना मैं अपवर्ग
जीवन मे चाहता आनन्द और प्रज्ञा की उमग
मन मे पालता श्रेयस के स्वप्न असीम
मुक्त गगन को देखता मै, असीम सृष्टि को नापता मैं
जीवन दृष्टि को खोजता म
विश्व श्रेयस के रचता छद
मै मेरी प्रकृति का जीवन्त रूप
अनुभूत जगत का मै द्रष्टा
स्वप्नलोक मे रचता म नियति के धवल स्वप्न
आत्मविभोर आखें, आस्थामय पलकें
जीवन क्षितिज को नापता देखता मै आगे

पत्त-दर-पर्त उघाडता मेरा ग्रस्तित्व
फैल जाता एक लम्बा इतिहास
कही पूण इच्छायें
कही ग्रतृप्त कामनायें
कहो दमित ग्रौर कही स्वाधीन
स्वाधीनता के क्षणो मे ही हो पाता है ग्रनुभूत मुझे मेरा ग्रस्तित्व
स्वाधीनता हो मेरी चेतना का ग्रक्षय धम
यही तो देती है मुझे मेरा बोध
पराधीनता के क्षणो की ग्रनुभूति मे हूँ मेरा शू य
स्वाधीनता की उमग मे जब बहता मन
प्रवाहमान होता तब जीवन नि सीम
छू लेता दिग तो के तट
नाप लेता ब्रह्माण्ड का विस्तार
स्व ऊर्जा से रच लेता एक नया विश्व
करता मैं शब्दो मे मेरा रूपायन
शब्द शब्द के योग से रचता मेरा समग्र
मेरी प्रतिमूर्ति मे स्वाधीन भाव चेतना का नि सीम नभ
चाहता जीवन तट के कूलो पर पुष्पो का नर्त्तन
चाहता प्राणदायी सौरभ ग्रौर उमग
पुलक ही होती है
जीवन का
प्रस्फुटित क्षण
दूर फेंक देता हूँ उदासी
ग्रौर निराशा के दशन को
ग्रास्था मे गू थता हूँ जीवन के शब्द
विराट् सृष्टि का हो जाता मैं गायक
ग्रौर विश्व का मगलछद ।

मेरी अनुभूतियो मे फैला है विराट् ससार
जय और पराजय का लम्बा इतिहास
प्रकाश और तमस का होता आया है सतत् सघर्ष
न्याय और अन्याय का चलता है द्वन्द्व
सत्य और असत् के मध्य शाश्वत युद्ध
मेरे भाव पटल पर अकित होते
मेरे अनुभूत जगत के आत्म-स्फूर्त शब्द

प्रतिकार और स्वीकार की गतित है- मन मे प्रक्रिया
अन्याय, असत्, तमस् और दिग्भमो विश्व का
करता मैं प्रतिकार
मानव इष्ट और सत्य को करता स्वीकार

मेरे भाव चक्षुओ का फैलता ससार
विश्व के नभ पर चाहता देखना
स्वर्णिम प्रभात
विराट बोध तो है स्वय मानव
वही क्यो आज असहाय
जीवन गति मे टटा मैं
थका हारा मन क्लान्त
घहराता प्रतीत होना गहन तमस
मानव खोता जाता पथ, होता जाता बौना
पता नही क्या होगा
यात्रान्त का फलितार्थ
फिर भी शेष है मुझमे आस्था की रश्मि
बचा है अब भी प्रज्ञा का आलोक
एक दिन तो खोजेगा ही मानव
जीवन आस्था का दिव्य स्तूप

सृष्टि विभु सा मै विराट्

स्व मेरी सृष्टि का आधार
स्व मेरी दृष्टि की पृष्ठभूमि
और मेरा इतिहास
मेरे अंतस् मे पैठकर खोजता मैं अस्तित्व का अर्थ
करता मैं अस्तित्व-प्रज्ञा दर्शन की बात
ढूँढता मुझमे ही मैं मेरा प्रयोजन
और मैं-अहमस्मि ब्रह्माण्ड के आयाम
दूर तक फैलती नभ मे आखें
नि सीम सृष्टि विस्तार तैरता पलको मे
आत्मबोध के हो जाते असख्य आयाम
अनन्तरूपा कल्पना के बढते चरण
अणु से महत् की करता मैं यात्रा
ज्ञान-विज्ञान मे खोजता मेरा स्व
कहा है किन्तु कहा वह
वहाँ तो कोरा इतिहास
तथ्यात्मकता तो हूँ मैं मेरी
मैं ही मेरा अर्थ
शब्द योजना मे हो जाता स्व मुखर
करता मैं स्व-सृष्टि का सीधा साक्षात्कार
गूंजता सवत्र अस्तित्व का नाद
नाचती सवत्र चेतना की लहरें
प्रवाहमान् है सवत्र ब्रह्माण्डीय तरग
सृष्टि विभु सा हो जाता मैं विराट्

अक्षय अमृत रस

करता मै मेरा अनुसधान
खोजता स्व के अक्षाश और देशान्तर
स्व से सृष्टि तक फैला मेरा अस्तित्व ब्रह्माण्ड
मैं-बोध की गढता मैं प्रतिमा
करता प्रतिमा मे प्राण प्रतिष्ठा
स्व-ब्रह्म सी दिव्यता हो जाती मुखर
प्रतिमा की आकृति मे
मानव ही तो है सृष्टि का सवश्रेष्ठ तत्व

कहाँ जान पाता है मानव अपना ही स्वरूप
कहाँ हो पाता है वह स्व-अह का ब्रह्म
अपनी पहचान को खोकर
भटकता है वह अनस्तित्व सा जीवन के झझाओ मे
पशु आचरण सा करता वह
सीगधारी सस्कृति का पालक वह
जीता है अरण्यीय भाव इच्छा मुद्रा मे
इसीलिए तो है युद्ध और सघर्ष
इसीलिए तो है प्रेतवत् आचरण
इसीलिए तो है घोर कुण्ठा की अधी उपत्यका
इसीलिए तो है विश्व प्रेतो की नगरी
क्षुब्ध हूँ मैं विश्व के प्रेतीय प्रतिमानो से
क्यो नही जागृत होती मानव मे मानव-दृष्टि
क्यो नही हो पाता स्वय मानव अपना ही दिव्य
क्यो नही हो पाता जीवन सहज अपवर्ग
आखें सजल/भाव तरल
विश्व दृष्टि मे चाहता परिवतन
चाहता जीव मात्र के प्रति प्रेम का निझर

अन्यथा फैलेगा ही महाप्रलय
सत्तायें भी तो है दिग्भ्रमित
मानव को तिरस्कृत कर इठलाते सिंहासन
अणु अस्त्रो का अब भी है भण्डार
चाद पर प्रस्थापित हो रहा है नया साम्राज्य
धरती तो आकण्ठ डूबी है किन्तु कुण्ठा मे
वेदना से कहा मिली जीवन को मुक्ति
अभाव विषाद-मुक्त कब हो पाया जीवन
विश्व कब हो पाया मुक्त-अपवर्ग
जीवन का क्रम कहा सहजात्मक लय
मन मे बैठा प्रेत कब हो पाया शान्त
अन्धी गुफा सा है मानव का अतस्
वही से पैदा होता महातमस्
उसी तमस् से आक्रान्त हूँ मैं और विश्व
वही फैला है वह होकर राहू और केतु
वही निगल रहा है मेरे स्वप्नो का प्रज्ञा ब्रह्माण्ड
नियति के प्राण फसे है चक्रवातो मे/आगत प्रतीत होता है शून्य
क्यो किया जाता हूँ प्रताडित और दण्डित
मांगता मैं तो मेरे अस्तित्व का प्रामाणिक आधार
जीवन का अधिकार तो है सबको ही
मुझ को भी है
चाहता हूँ अधिकार का रक्षण और खडे होने की सुदृढ भूमि
नही कहा टिकेगा मेरा अस्तित्व
सहस्र सूर्य सी हूँ मैं प्रज्ञा
असीम क्षमताओ की हूँ मैं शक्ति
जब चांद और मगल का कर सकता हूँ आरोहण
तब धरती के लिए रहूँगा मैं कब मौन
करता मैं अस्तित्व प्रतिमा का अनावरण

घोषित करता विश्व को सवतन्त्र मुक्त
देखता आखो मे आगत के स्वप्न
स्वाधीन विश्व मे ही नर्तित हो सकता है मानव का मन
बढ़ा रहा है चरण रचने नया विश्व
लिख रहा हूँ अपना नूतन इतिहास
प्रस्तावना मे लिखे है मैने मानव गरिमा के शब्द
प्रतीको मे रचा है समग्र मानव का बिम्ब
दिशा के गतिपथ भी है वहाँ
मानव की पक्षधरता की प्रतिबद्धता भी है अंकित
जीवन और सृष्टि छद के गूढार्थ भी
और अस्तित्ववान् मानव नियति और प्रज्ञा का महाभाष्य भी
विश्व की सरचना होती आई है परिवर्तित,
नये रूप और विधान का हुआ है प्रयोग भी
कालजयी सस्कृति तो वही है बन्धुओ
जो करदे निर्मित मानव श्रेयस के त्रैकालिक स्तूप
उसी सस्कृति का महाद्रष्टा
उसी सस्कृति का मैं प्रतिमान
नव्य यात्रा का मैं प्रारम्भ
विश्व की एकात्मक लय का मैं गायक
हो विश्व एक मनोहारी स्वप्न
हर हाथ पर अंकित हो अपना भाग्य
हर आख मे हो शाश्वत उजास
हर हृदय मे पुलके महाब्रह्माण्ड
हर मानव मे गू जे स्व के महाविभु के छद
मेरी पलको मे नाचते हैं ये ही स्वप्न
खोजता हूँ मेरी चेतना और नियति का
अक्षय अमृत-रस

पथ चिन्ह

कोलाहल के दूर एकान्तता मे डूब जाता जब मन
स्व के निकट आकर सोचता मेरी बात
चेतना के अतल के खुल जाते चक्षु
हो जाता मैं महासृष्टि का विस्तार

अधिकृत अह् चेतना के ढूढता प्रतिमान
प्रामाणिक मैं-बोध के रचता मैं सूत्र
चाहता करना सृजित मेरी भावाकृति की प्रतिमा
चाहता मेरी पहिचान के शिल्प, पथ और रग
हो सके जो मेरा प्रतिरूप और मै का प्रतिमान
मैं की अधिकृत भावभूमि पर ही उगते सत्य और श्रेयस् के बिम्ब
दरिदगी का विश्व देता मुझे सताप
आत्मघाती युग करवाता मुझमे आत्महत्या
नही होना चाहता मैं पर मेरा शून्य
मैं चेतना मे गू जता है मेरा प्रामाणिक जीवन स्वर
हो जाता हूँ मैं प्रेतीय विश्व का प्रतिरोध

नही मैं 'मैं' का व्याकरणीय बोध
तोड दी है मैंने सम्पूण दीवारे
मै सृष्टि भाव सा अनन्त
मैं हूँ देह-चेतनागत व्यष्टि इकाई
वही है मेरी अनुभूति, विचार और जीवन का केन्द्र
उसी मे चाहता हूँ मैं अमृत रस-धारा का कलकल
चाहता हूँ हर जीवन मे पीयूप रस का आप्लावन

मैं हूँ मेरी अस्तित्व समग्रता का प्रतीक
और/असख्य कोषीय प्रक्रियाओ का सश्लेषण

मैं हूँ चेतना की प्रक्रिया
और मुक्ति का स्वाधीन छंद
मैं ही मेरा प्रतिनिधि, इच्छा और कर्म का केन्द्र
इच्छायें उमगित होती है होते अपना असीम विस्तार
क्रिया, कविता और रचना में अंकित होता
मैं होकर मेरा प्रतिबिम्ब
पलती इच्छायें पीयूषवर्षी सी
करते शब्द और भाव विश्व का मंगलगान
आततता का विश्व देता मुझको दुःख
उद्वेलित कर देता चेतना का मन
विक्षोभ के ज्वाराघातों से मैं अशान्त
सोचता कैसे हो आत्तमुक्त मानव और विश्व का नभ
कैसे फैले हर आंख में जीवन और प्रज्ञा की पुलक
इन्हीं प्रश्नों में उलझा रहता है मन
ढूंढता समाधान के पथ

मानवाभिमुखी हो जाती है आंखें
वही तो है नियति, इच्छा, विचार और क्रिया का केन्द्र
उसी के जागरण में है विश्व का हित
भेदों में ढूंढता मैं अभेद तत्व
मन से मन को बांधने का संकल्प
विश्व तो है मानव मात्र का
क्यों सीमाओं और बाधाओं का दंश

अमृत पुत्र मानव होना चाहता अभय
किन्तु कहां शेष बचा है अमृतपथी सा ज्ञान
मानव ही नहीं बचेगा मानव में
तो कैसे होगा—
युग और मानव का परित्राण

इसीलिए तो कहता हूँ बन्धुग्रो—
चलाग्रो मानव के पक्ष मे ग्रभियान
मानव पक्षधरता ही करेगी मानव का कल्याण
खो गया है मानव का जो ग्रसली मानव
युग सस्कृति के ग्ररण्य मे
उसी को खोजता हूँ मैं
बैठा हूँ उसकी प्रतीक्षा मे ग्रौर देखता उसके स्वप्न

इच्छाग्रो के उग ग्राये हैं ग्रब प्रेत से पख
भयाक्रान्त हो जाता हूँ प्रेतीय बिम्ब विधानो मे
किन्तु प्रतवत् विश्व मे कहा मुक्तद्वार

प्रामाणिक इच्छा ग्रभिप्रेत ही करेंगे
नये मानव ग्रौर विश्व की सृष्टि
उसी पर केन्द्रित है मेरी दृष्टि
उसी की प्रतिमा का करता हूँ मैं ग्रकन
उसी की साधना मे व्यस्त है मेरा शब्द-भाव शिल्पन
वही है मेरा इष्ट ग्रौर ग्राराध्य
उसी के निमित्त ग्रर्पित है मेरा सपनो का ससार
भेदो मे है जो ग्रभेद तत्व
वही है सृष्टि का महानियम

खगोलीय दशन चेतना मे ही है मानव का परित्राण
उसी के खोजता हूँ मै पथ चिन्ह ।

शब्द मूर्ति की व्यथा

मैं का सकोचन कर देता मुझको शून्य
बाध लेता मेरी चेतना ग्रथियो को भेदो के कारागृह मे
कर देता मेरे बोध को अप्रामाणिक अह केन्द्र
ऐंठ जाती है शिरायें और मन हो जाता क्षुब्ध
विराट् से पृथक् होकर कहा मेरा अस्तित्व
भेदो की दृष्टि मे खण्डित होता मन
एक विश्व और सृष्टि का टूट जाता स्वप्न
क्षुद्र व्यक्ति-अह हो जाता मानव का प्रेत
नही चाहता मैं होना मेरा ही दैत्य
जाना है मैंने तो अपने स्व-अस्तित्व को
रचे है मैंने तो विश्व श्रेयस् के छद
कैसे हो सकता हूँ मैं अब उनसे विमुख
लेता रहूँगा अखण्डित मानव और विश्व का पक्ष
करता रहूँगा महाब्रह्माण्ड मे मेरे अस्तित्व की बात
खोजता रहूँगा सत्य और जीवन का अमृत पथ
रचता रहूँगा मानव के शाश्वत् छद
सृष्टि की गू जन झकृत है कोप-कोप मे
रोम-रोम मे अकित है मेरा इतिहास और सृष्टि का महारास
त्रैकालिक सत्य से अनुप्राणित मेरे शब्द

निकल आता हूँ मैं बाहर
तोडकर सकोचन की परिधि
मुक्त विराट् मन से खेलता है भाव
आत्म चेतना का उत्क्रान्तित स्वर-स्फोट
मन के गर्भगृह मे व्याप्त
क्यो विश्व मे सकोचन और विषाद
क्यो नही जीवन नभ का भाव नि सीम

क्यों नही है मानव का मन भेदमुक्त
और सृष्टि महत् सा अद्वैत
चाहता है मन तोड़ दे विश्व की कारायें
उखाड दू भेद दृष्टि के स्तम्भ
चाहता हूँ अभेद दृष्टि का विश्वजनीन जीवन-दर्शन
उसी की मस्तिष्क मे बात
भेद-दृष्टि होती तमस् का गभ
पैदा होते वहा असत् और अनीति के पुत्र
वही से होता मानव का क्षय —
जन्मता वही से दमन, स्वाथ, सघप और आतक
धम से लडता आज धम
ईश्वर का प्रतिपक्षी हो गया है दूसरा ईश्वर
मानव का प्रतिरोधी हो गया है मानव
प्रलय के तट पर गिनता है युग अन्तिम सासें
भेदो के इच्छा प्रेतो से मैं आक्रान्त
अब धरती भी है खण्डित और आकाश भी
मानव भी है खण्डित और आस्था विश्वास भी
खण्डो की सस्कृति मे हो गया है मन खण्डहर
शेष है बस अस्थियो का शिलालेख
अकित है उस पर मेरी वेदना के गीत
–स्वप्नो का सगीत
और सकल्पो का सकल्प-पत्र
प्रलय के पश्चात पढेगा कौन उनको
खोजेगा कौन मेरे भावो का अथ
अब भी समय है दोस्तो
बूझो मेरी
शब्द मूर्ति की व्यथा
नही तो शेष बचेगा केवल शून्य ।

मै-स्व अहं

सोचता हूँ मैं जब भी कविता की बात
अस्तित्व भाव फल जाता विचार भाव कोषों मे
अस्तित्व ही ता है मेरा जीवन-भाव
अस्तित्व ही है मेरा प्राण-तत्व
अस्तित्व है तो मैं हूँ और है मेरी चेतना
अस्तित्व है तो कविता है और हूँ उसका मैं सजक

मेरी भाव शिराओ मे स्पन्दित होता
अनुभूत जगत का आलेख
मेरे विचारो मे घूम जाता स्व और सृष्टि का परिदृश्य
हो जाती है मेरी कविता मेरी अभिव्यक्ति
और सृष्टि सत्य की वाणी
हो जाती है मेरी कविता
विश्व और मानव का जीवन्त आख्यान
कृत्रिमता से दूर मैं रचता मेरे प्रामाणिक अस्तित्व के छंद
प्रवाहमान् होते है भाव और शब्द
सहजगति से जैसे अन्त सलिला का अबाधित जल
भावो मे प्रतिबिम्बित अनन्त परछाइयाँ और बिम्ब
कल्पना के स्पुतनिक करते सौर मण्डल
और सृष्टि की यात्रा
कल्पना के गवाक्ष मे ही देखा करता मैं
नियति और आगत के स्वप्न
यथाथ की भूमि पर टिके हैं मेरे पाव
निमम युग और अतीत से टकराता मन
त्रासदी के हेतुओ का चाहता उन्मूलन
यही है मेरी कविता के अन्तर्कथ्य का कोण

जीवन का इष्ट ही मेरा आराध्य
जीवन ही है मेरा सतत् साध्य
चाहता जीवन को अमृत-अस्तित्व का सर्ग
चाहता मुक्त जीवन का स्वाधीन गगन
चाहता चेतना की लहरो का शाश्वत नर्त्तन
दु खो से द्रवित है मन
सतापो मे दहकता है जीवन
विषाद मे डूबी है आखें
फिर भी नही टूटा हूँ मैं
लेता हूँ आगत के स्वप्न
खोजता हूँ अमृत का पथ
ढूढता हूँ विश्व नियति का स्वर्णिम गगन

विश्व है विषाद का राग/जीवन है त्रासदी का ज्वार
दिशाहारा अधड करता आक्रान्त
इच्छाओ का अमृत सोख जाते प्रेत
कालचक्र मे घूर्णित है मन
निराशा का भाव देता भय
पलको की मुस्कान कर देती जागृत भावो का मन
प्राणो के हर स्पन्दन मे फैल जाती विश्वास की ज्योति
शब्द-शब्द मे नर्तित होती असीम ऊर्जा तरग
मेरी कविता के भाव-शब्दो मे है आगत के स्वप्न
मेरी कविता के लिए चाहिए
विराट् दृष्टि का मन
मानव के प्रति अर्पित है मेरे शब्दो का क्रम
वही दिव्य सृष्टि का सर्वोत्तम जीव
वही मुक्तिकामी ब्रह्मत्व
खगोलीय दृष्टि चेतना का मैं स्व ग्रह ।

मानव मुक्ति का मै शाश्वत दर्शन

मैं हूँ मेरा शिलालेख
गढा है इसका शिल्प और आकार मैंने
मेरे भाव, विचार, इच्छा और कृतित्व के घटको से
जीवनानुभूति मे सचित है मेरा इतिहास
शब्द-शब्द मे अकित मेरा महाख्यान
सतत् सघषशील है जीवन
आक्रान्ताओ से टूटता रहा हूँ मैं
टूट-टूट कर सभलता रहा हूँ मैं
यही तो है पुरुषाथ का वल
क्षयित होकर ध्वस्त हो जाऊँ तो कहा मैं

कदम-कदम पर बाधायें और प्रेत
द्रवित हाता मन
घुटते है त्रासदी मे प्राण
देखता विश्व का नभ
भयद और विकृत बिम्ब
सृष्टि और मायावी विश्व से बधी नियति
कहा मैं का इच्छित मैं और स्वाधीन
फिर भी न मालूम हो जाता क्यो अहसास
कि मैं हूँ अजेय और मुक्तकामी बोध
कौन जानता है क्या है जीवन के उस पार
किन्तु जीवन तो है मेरी इच्छाओ का सघषशील ससार
आखो मे पलते है रम्य स्वप्न
सघर्षों से कहाँ पर मुक्ति
प्रगति मे होता उत्क्रान्तित चेतना का भाव
प्रगति मे समाहित होती व्यक्ति समग्र की श्रेयसकारी सृष्टि

प्रगति मे होता सर्वहित, सत्य, सौन्दय का अभिलेख
प्रगति की इसी भाषा से मेरा अभिप्राय
सबके होते अपने-अपने प्रयोजन
और अपने-अपने मन्तव्य
मेरा प्रयोजन तो मात्र अस्तित्व दृष्टि की पलको का हास
हो सकता है जीवन मृत्यु की सीमा मे कैद
हो सकता है जीवन प्रकृति का कोई अर्थहीन उच्छवास
किन्तु जब तक है प्राणो मे जीवन सास
चाहता मैं विषादमुक्त जीवन भाव
चाहता सम की दृष्टि/जीवन की अखण्डित लय
विकृतियो से दूषित हो जाती है प्रतिबिम्बो की प्रकृति
खण्डित हो जाती है मेरे जीवन भावो की मूर्ति

मूर्ति का खण्डित होना अर्थात् मेरा टूटना
विषाद के महाज्वार मे बहना
अपना अनस्तित्व होकर
शून्यवत् होकर जीना
नही अगीकार कर पाता मन यह दशदायी स्थिति
नही स्वीकार कर सकता मैं मेरी भावमूर्ति का खण्डन
करता हूँ मैं मेरी मूर्ति के रक्षण का उपक्रम
प्रेतवत् मायावी विश्व से करता सघष
नकारात्मक विश्व अभिप्रेतों से चाहता मुक्ति
चाहता विश्व व्यवस्था का सर्वहिती दर्शन
प्रतिरोध सा अडा हूँ अपने प्रण पर
सकल्पित हूँ नये विश्व के उद्भव के हेतु
मानव मुक्ति का मैं शाश्वत नर्त्तन ।

मेरा ही अनस्तित्व

चक्रित है चक्रवातो मे मन का ब्रह्माण्ड
रोम-रोम मे गूँजते है त्रासदी के स्वर
नही हो पाता चक्रवाती विश्व मे मेरा अस्तित्व मुखर
–मैं हूँ मैं मेरे अस्तित्व की चेतना
मैं हूँ मात्र स्वकीय बोध
जानता हूँ सृष्टि सायुज्यता मे बधे हैं प्राण
पराधीनता के महापाश मे मैं आंशिक स्वाधीनता बोध
कहा पूर्ण स्वाधीनता का मुक्त गगन
कहा स्व के पूर्णत्व भाव का अस्तित्व
न मेरा कर्म स्वाधीन और न नियति स्वाधीन
न रच पाता मैं मेरी इच्छाओ का अपना लोक
कोष-कोष मे फैला है अन्य का भाव
काली विकृत परछाइयो से मैं आक्रान्त
कही लदा है मेरी पीठ पर प्रेत सा विश्व
कही आरूढ है मेरी गर्दन पर अन्य सा दैत्य
कही फसा हूँ मैं व्यवस्था के चक्रवातो मे
कही हूँ मैं कैद यन्त्रणा के ज्वारो मे
जीवन नही है अपवर्ग/जीवन नही है स्वर्ग
है यह शक्ति, धूर्तता, आतक शक्ति का खेल
जिसमे है जितनी शक्ति, धूर्तता और दमन का सकल्प
वही जीत लेता है धरती/बन जाता है सम्राट
निगल जाते हैं ये शक्ति के आतककारी मेरा अस्तित्व
नही जीता हूँ मैं मेरा जीवन/नही भोगता हूँ मैं मेरे क्षण
भोगते है मुझे तो विश्व के प्रेत
अन्यथा जीवन का जीता मैं
मेरा ही अनस्तित्व ।

स्वप्न

अस्मिता की खोज मे मेरे शब्द व्यस्त
अस्मिता के आयामो का करता मैं विश्लेषण
है यह मेरा और मेरे स्वानुभूत जीवन का वर्णन
तिक्तता, रिक्तता, भय और अनिश्चय से आक्रान्त है मन
जीवन की दशित अनुभूतियाँ नही मेरा काम्य रस
चाहता मैं अमृत
मिलता मुझको विष
चाहता विषादमुक्त जीवन
मिलते मुझे सत्रासो के दश
काम्य और प्राप्य दोनो एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी
नही प्राप्त होता है मुझे मेरा अभिष्ट लोक और अथ
नही कर सकता मैं प्रेतो की पूजा
नही कर सकता मैं तमस् का अभिषेक
नही खो सकता मैं मेरी गरिमा
और उद्देश्यो के अभिप्रेत
मेरे अभिप्रेतो मे तो गूजता है स्व और सृष्टि का हित
मेरा उद्देश्य तो है विराट् भावो का विश्व
उसी के लिए हूँ सकल्पित और अर्पित
उसी मे है मेरे शाश्वत हित

अस्थिया हूँ मात्र
किन्तु अस्थियां वज्र
नही क्षयित कर सकेंगे अणुअस्त्रो के प्रेत
मेरा अस्तित्व
नही उदरस्थ कर सकेंगे रक्तपायी अन्य
मेरा वचस्व
करता रहूँगा मेरी गरिमा के लिए सतत् सघर्ष

नही रोक सकेंगी प्रेतो की सगीनें मेरा पथ
नही दिग्भ्रमित कर सकेंगे मुझे असत्यो के दैत्य
नही सोख पायेंगे विषधर मेरा अमृत कोष
मैं हूँ शाश्वत अक्षय और अमृत का गर्भ
इसीलिए झेल पाया हूँ इतिहास के प्रेतो के सहस्रो आक्रमण
किया है असीम ज्वाला का विषपान
सहे हैं अनन्त यत्रणा के दश और प्रहार
खण्डित नही होने देता मैं मेरी मूर्ति
भगित नही होने देता मैं मेरा स्वप्न
करते रहे आप प्रशस्तियो और पुरस्कारो की बात
विद्रोही भाव चेतना का मैं शाश्वत् उद्घोष
मानव के उत्कान्तित विश्व का लेता मैं स्वप्न
जब तक नही मिटेगा अन्याय
जब तक नही टूटेंगे प्रेतीय अभिप्रेतो के दुर्ग
जब तक नही होगा समता का राज्य
तब तक झेलता रहेगा मानव वेदना का ज्वार
टूटता रहेगा उसका अस्तित्व
बिखरते रहेगे तपती धरती पर आसू
क्रन्दन फोडते रहेगे आकाश के कान
गू गे, अधे और बहरे
नही सुन सकेंगे आत्तता का आख्यान
नही कर सकेंगे वे अत्याचारो का प्रतिरोध
नही देख सकेंगे नगे यथार्थ के विभत्स प्रेत
या तो वे हैं निमम पाषाण
अथवा अस्तित्व ज्ञान और सत्य से रिक्त
सूखे काष्ठवत् जड सवेग
हो सकता है भक्ष्य और भक्षक रूप ही है
विश्व यात्रा का स्वरूप

मुझे है इस अरण्यी सस्कृति से वितृष्णा
नही देख पाता नरभक्षी आख का निमम भाव
प्रतिकार मे स्फोटित मेरा बोध ससार
करता जिसे मैं शब्दो मे व्यक्त
मेरे मन मे तो है करुणा का भाव
तथागत सा अथवा ईसा सा
वाल्मीकि सा अथवा मेरे जैसा
चाहता हूँ सह-अस्तित्व का सिद्धान्त
चाहता हूँ मानवीय अभिप्रेतो का शुद्ध और प्रवुद्ध ससार
विश्व हो गया है महाविभत्स
प्रकृति और जीवन मे फैल गई विकृति
जीवन होता जाता भार और तुकहीन सन्दभ
मानव हो गया खण्डित और अपना ही विलोम
स्व-सार का समुच्चय मानव
भूल गया अपना ही स्वरूप
सह-अस्तित्व का दशन क्यो हो गया लुप्त
मानव यात्रा आ पहुँची है प्रलय के कगार पर
निणय का समय है
युग मागता है समस्याओ का शाश्वत समाधान
कौन करे मानव का परित्राण
कौन दे मानव को जीवनदान
मुक्ति की कामना मे रचता मै
मेरी कविता के छद
अभिनव मानव और सश्लेषित-एकात्मक
विश्व व्यवस्था के देखता स्वप्न ।

मै शाश्वत और नैसर्गिक सर्ग

प्रश्नो मे डूबा है मन
अनेक अह् प्रश्नो का खोजता समाधान
मस्तिष्क मे होना साथ-साथ
स्व और सृष्टि का परिदृश्य
घूम जाता विचार कोषो मे
जीवन का सचित इतिहास चिपका है प्राणो से
अनेक-अनेक भावनायें जन्म जाती सहज सी मन मे
सोचता मैं–
क्या है जीवन का अर्थ
क्या है मानव का सत्य
क्या है सृष्टि का स्वरूप
क्या है नियति का पथ
परिभाषाओ की पुस्तकें छा जाती स्मृति पर
नही दिखता कुछ साफ
परिभाषाओ और ग्रथ-ज्ञान से आच्छादित चेतना
नही देख पाती स्व और सृष्टि के आर-पार
अपारदर्शी सा प्रतीत होता है सब कुछ
प्रज्ञा हो जाती है कुण्ठित
स्वाधीन होती पर प्रज्ञा की प्रकृति
ग्रथीय परिभाषाओ को भेदकर
देखती वह स्व, विश्व, जीवन और सृष्टि को अपनी ही दृष्टि से
मैं भी कर रहा हूँ यही
जीवन और ग्रथीय ज्ञान की अपारदर्शिता को चीर कर
खोजता हूँ ज्ञान, सत्य और नियति का स्व-पथ
सत्य है सृष्टि और स्व का अस्तित्व
अगोमधर्मी है स्व और सृष्टि की प्रकृति

असीम ऊर्जा से युक्त है मानव की चेतना
इसीलिए चुनता है पथ मानव
अपनी कल्पना और सृष्टि रग का
करता है सदैव सघर्ष विपरीत प्रकृतियो से
बनाना चाहता है जीवन को आनन्द का गर्भ
और त्रासदीमुक्त परिवेश
किन्तु नही हो पाता है उसका स्वप्न साकार
नकारात्मक अभिप्रेत और विध्वसी प्रवृत्तिया
बाधायें सी खडी हो जाती आगे
फिर भी सकारात्मक प्रज्ञा दृष्टि नही होती नतमस्तक
नकारात्मक अभिप्रेतो के समक्ष

जीवन चाहता मात्र अपना योगक्षेम और मुक्ति की दृष्टि
यही है मेरा काम्य और दृष्टि का बिन्दु
नही देख सकता मैं मानव को आखो मे आसू
तप रहा है मानव आज अणुतापीय भट्टियो मे
भस्मीभूत होता जा रहा है जीवन और अस्तित्व
किसके लिए हैं परिभाषायें, विज्ञान और दर्शन
किसके लिए है सत्ता, व्यवस्था और ज्ञान
मानव श्रेयस् के लिए नही यदि ये तो क्या इनका अर्थ

ढूढता रहे दर्शन और विज्ञान सृष्टि के रहस्यो को
नही भेद सकेगा पर महाब्रह्माण्ड के रहस्य का दुर्ग
क्यो उलझें हैं आप परिभाषाओ और
सिद्धान्तो के चक्रवातो मे
क्यो दिग्भ्रमित है ग्रथो के ज्ञान मे
सत्य की दृष्टि होती सदैव स्वाधीन
आख खोलकर देखें तब साक्षात्कारित होगा स्वय सत्य

नगा यथार्थ विश्व का है कितना निमम
सन्त्रास मे डूबा है जीवन का प्रतिक्षण
तमस मे भटकता है सृष्टि का सत्य
जीवन हो गया है तप्त आणविक भट्टी
न प्राणो मे अब उमग
न चेतना मे स्व का सगीत
न स्वाधीनता का पूर्णाकार चन्द्र
न अस्तित्व के समग्रत्व की अनुभूति
देह तक सीमित है सारा जीवन-दशन
परकीय रक्त के प्यासे है प्रेत
फिर कैसे हो मानव और विश्व का साधित योगक्षेम
ब्रह्माण्डीय रहस्यो को खोजते रह आप
नही प्राप्त होगा सृष्टि सत्य का अतिम ज्ञान
क्यो अन्धी परिभाषाओ से सचालित है विश्व
क्यो रक्तपात, उन्माद, हिंसा और आतक के दैत्य
मुझे है इनसे घृणा
है ये स्व सारत्व के नकारी भाव
चाहता हूँ मैं इन सबसे मुक्ति
चाहता हूँ मानव का सत्रासमुक्त आयाम
नही मुझे ग्रथो मे वर्णित परिभाषाओ से सरोकार
मेरे लिए तो है मानव सत्य
उसी के लिए रचता मै मेरे छद
तमस की कारा से चाहता मुक्ति
सृष्टि असीम/दृष्टि असीम
असीम-अस्मिता की पक्षधरता का
—मैं शाश्वत और नैसर्गिक सग ।

चिरयात्री

दिशाओ को खोजता-खोजता भटक गया विश्व
नही प्राप्त कर पाया है साधक दिशाओ का ज्ञान
अस्तित्व के प्रति नही जागृत हो पाई है चेतना
मानव के प्रति जाग नही पाया है अब भी दृष्टि का सन्मान
भेदो मे विभक्त है मन, समाज और विश्व
अन्धी परिभाषाओ से सचालित है जग
अस्त्रो की होती है अब भी पूजा
तमस् के घहराते है अब भी पयोद
सिंहासनो के आदेशा मे नही न्याय और सत्य
मानव के प्रति नही किसी का मोह
जीवन की शेष बची नही अर्थवत्ता
मात्र भौतिकता और सत्ता से मोह
पदार्थ के पीछे भागता मानव हो गया स्वय पदार्थाकृति और जड
मानव की आन्तरिक प्रकृति लय हो गई खण्डित
शुभ और अशुभ का मिट गया भेद
सत्य, शिव और सौ दर्य मात्र मायावी शब्द
जीवन का प्रतिकोण तो है अब तमसाच्छित
स्वार्थ के कटघरे मे है श्रेयस् कैद
विस्तार की आखो मे फैल गया अन्धेरा
सकुचित क्षुद्र अह के नेत्र हो गये विशाल
प्रतीत होता हर परकीय शैतान सा सीग
भयाक्रा त रहता है मन
पता नही कौन कर दे कब प्रहार
सशय से सतप्त रहता है मन
जीवन रस को सोखता जाता है युग और इतिहास का अन्धा सूर्य
मन होता जाता है क्षुद्र कारा मे कैद

आतंक, दमन और अत्याचारो का बढता जाता है भय
अनेक चौराहो पर खडे हैं अनेक सर्पिल प्रश्न
मानव खोता जाता है अस्मिता का अर्थ और मानवता की दृष्टि
अर्थ और सत्ता के समक्ष बन जाता मन बौना
अस्त्र शक्ति का फैलता अहर्निश भय
अणु अस्त्रो से फैलता आगत के समक्ष तमस
न आश्वस्तता का भाव
न जीवन सुरक्षा के निर्मल तट
मगरमच्छो से भरा है सागर का जल
भयाक्रान्त करते विकराल जबडो के दात
युग सस्कृति के अतम् मे फैला धुआ और फौलाद
मन मे ज्वार
शकित नेत्रो से देखता मैं हर क्षण के प्राण
कहाँ है नि शकित दृष्टि का जीवन भाव
चुभते फौलाद की कीलो से जीवन मे काटे
मन मे फैलता जाता सन्निपात सा शून्य
निर्वासित है देह से चेतना
मन है मात्र झझा
और कुत्सित परछाइयो का प्रतिबिम्ब
जीवन के कोषो मे नही शेष अब सार्थकता का सम्बल
अर्थवत्ता और अनर्थवत्ता
अस्तित्व और अनस्तित्व के मध्य
रहा नही भेद
मानव हो गया स्वय अमानव
और विकृत परिवेश का दास
भूल गया स्वय अपने और अन्य के
अस्तित्व की बात
पारस्परिकता मे रहा नही निश्छल स्नेह

हर आख से लगता है अब भय
हर भाव मे फैलता अब सताप
था जहाँ जीवन मे अमृत रस काम्य
वहा है वहते पिघलते फौलाद के सागर
तपता फौलाद तो देगा ही तपन
शान्ति, शीतलता, प्रेम और सौम्य रस का वहाँ क्या काम
धु आ और तपन मे घुटते प्राण
जीवन सगीत को भूलकर
गाता मानव प्रलय के गीत
जीवन हो गया अब सताप का महाकाव्य
कहाँ शेष उत्क्रान्तित जीवन दृष्टि का सर्ग
आक्रान्त हूँ मैं अब हर कोण मे
अभिशप्त जीवन का हर आयाम
युग के दशन, प्रक्रिया और युग सन्दर्भो मे
बढती जाती मेरी अनास्था
प्रतिकार का उफनता ज्वार

मुझे तो चाहिए मेरे वे सन्दभ, विचार और दर्शन
अभिगु जित हैं जिनमे मेरे अस्तित्व के स्वर
पुलकती है जिसमे मेरी जीवन आखें
गधायित है जिनमे जीवन का रस
मात्र जीवन की उत्क्रान्तित स्थिति ही है
मेरे आकाक्ष्य मन का अभीष्ट स्वप्न
उसी दिशा पथ का हूँ मैं
अन्वेषक चिरयात्री ।

मैं शून्य का शून्य

बीसवी शताब्दी का हूँ मैं यात्री
भोगा है सदी का लम्बा इतिहास जीवन मे
जन्मा हूँ मैं इसी शताब्दी मे और डूबा हूँ उसमे आकण्ठ
देखे हैं मैंने शताब्दी के नभ पर उभरते विकृत बिम्ब
दो महायुद्धो मे झुलसा है जीवन
अणु विस्फोट के देखे ह विस्फोट
हीरोशिमा और नागासाकी का वेदनारयान
देता है अब भी दश और भय
उठ गया स्वय मानव और जीवन मे विश्वास
आस्थाओ मे शेष कहाँ जीवन का अथ
नगण्य है मानव का जीवन और अस्तित्व
प्राद्योगिकीय सस्कृति मे जलते प्राण
हाफता सास
भागता तन
थकता मन
क्लान्त और जजर जीवन का बोध
किसी भी दिशा मे शेष नही है जीवन का स्वर
अनास्था के ताप मे विगलित होता मन
क्षण के परिवेश पर तमम् के बिम्ब
आणविक भट्टी म तपता मन
विगलित होती जाती प्राण चेतना
मैं शून्य का शून्य ।

जीवन-दृष्टि का मै विराट्

कैसे स्वीकार कर सकता हूँ उस युग और सस्कृति को
जो कर देता है मेरा अस्तित्व विगलित
और बना देता है मुझे मात्र
धुऐ मे तैरती काली छाया
कैसे स्वीकार कर सकता हूँ मैं
सस्कृति के उन प्रतिमानो को
जो आधारित है किसी काल्पनिक सत्ता
और भेदमूलक पृष्ठभूमि पर
मेरी तो अस्था है मानव मे
मेरी तो आस्था है मानव गरिमा मे
मेरे लिए तो मानव ही नियति, सत्य और सत्ता का कोण
मेरी सस्कृति की पृष्ठभूमि मे है मानव
और उसी का नियति कोण
क्या करूगा मैं उस मोक्ष, अपवर्ग और स्वर्ग का
जब हो जाऊँगा मै स्व-सज्ञा से शून्य
भूल जाऊँगा इस जीवन को और मेरे स्वप्नो को
मैं तो चाहता हूँ सताप, विषाद और तमस् से मुक्ति
चाहता हूँ मैं तो स्वाधीन नभ मे विचरण
कुण्ठाये नही चाहिए मुझे
नही चाहिए मुझे तनाव से ऐठित शिराये
नही चाहिए मुझे भगित जीवन-लय
और नही चाहिए मुझे खण्डित स्व
पूर्णाकार मानव होना चाहता हूँ मैं

लोकोत्तर और अलौकिकोत्तर के द्वन्द्वो से मैं मुक्त
यह लोक ही है मेरी जन्मभूमि, कमभूमि और जीवनभूमि

यही है यह दग्ध तो कहाँ जीवन का पीयूषपान
यक्ष सा फैलता है मन
है जहा अस्तित्व का अमृत
उसी का चाहता हूँ करना पान
चाहता विश्व को सम-लय का ससार
औद्योगिकीय सस्कृति ने सोख लिये मेरे प्राण
तकनीकी तन्त्रो मे टूट गया जीवन का मत्र
मानसिक सताप मे दहकता मन
आत्मशान्ति के चाहता मौन क्षण
उसी शब्दहीन मौनता मे 'है' मेरा अपवर्ग
जीवन परिधियाँ तो हैं पर क्लान्त
मानसिक आलोडन मे मन व्यग्र
चाहता आत्मस्थिति प्रज्ञा का क्षण
चाहता मन के अपवर्ग का असीम स्वर
विज्ञान ने फैलाई तो विश्व की आँखें
एक विश्व की ओर बढता है युग
स्वाधीन दृष्टि भी हुई मुखर
जीवन के फैले बहुविध आयाम
पर तमस् और हिंसा के हाथ
प्रतिस्पर्द्धा और ईर्ष्या का मन
आतक और अत्याचार के भाव
अस्त्रो की प्रहारिक शक्ति के प्रेत
कब हुए मौन
स्वाधीनता का कहाँ मिला मानव को फल
रगभेद, जातिभेद, राष्ट्रभेद से कब हुआ विश्व मुक्त
अभावो मे टूटते प्राणो को कहा मिला
अभयता का वरदान
मात्र रह गया है मानव शताब्दी मे अनर्थवत्ता का अहसास

अनुभूतियो मे बहता है तपता लावा
जीवन मे फैलता जाता है विषाद ज्वार
नैतिक प्रतिमानो के खण्डित होते है प्रतिमान
दपण मे देखता
विकृत और तमसाक्रान्त परछाइयाँ

नही मैं यह
न यह मेरा प्रतिबिम्ब
है यह तो कार्बन, अणु और
विषाक्त युग के मानव की विकृत छाया
भयाक्रान्त हूँ मै इनसे
प्रकम्पित है चेतना के प्राण
लोक तो बस तमसाक्रान्त अस्तित्व
प्रज्ञा को ढाप लिया है अन्धे बादलो ने
जीवन को डस रहा है युग का सर्प

व्यर्थ है यह कहना कि
है यह विज्ञान और प्रगति का युग
लौट रहे है मानव के पैर पीछे
देख रहा है वहाँ है जहाँ आदिम काल के बिम्ब
नख, दत अब हो गये अणु अस्त्र
कहाँ हुआ मानव सस्कृति का
उत्क्रान्तित उद्भव और विकास
इसीलिए करता हूँ मैं
युग की सस्कृति का प्रतिरोध
चाहता हूँ जीवन मूल्यो के नये प्रतिमान
सम दृष्टि है मेरी और विराट् आखो का भाव
क्षुद्रताओ और सकीर्णताओ मे कैसे हो सकता मैं कैद

यही है यह दग्ध तो यहाँ जीवन का पीयूषपान
यक्ष सा फैलता है मन
है जहाँ अस्तित्व का अमृत
उसी का चाहता हूँ करना पान
चाहता विश्व को सम-लय का ससार
प्रौद्योगिकीय सस्कृति ने सोख लिये मेरे प्राण
तकनीकी तन्त्रो मे टूट गया जीवन का मन्त्र
मानसिक सताप मे दहकता मन
आत्मशान्ति के चाहता मौन क्षण
उसी शब्दहीन मौनता मे 'है' मेरा अपवर्ग
जीवन परिधियाँ तो है पर क्लान्त
मानसिक आलोडन मे मन व्यग्र
चाहता आत्मस्थिति प्रज्ञा का क्षण
चाहता मन के अपवर्ग का असीम स्वर
विज्ञान ने फैलाई तो विश्व की आँखें
एक विश्व की ओर बढता है युग
स्वाधीन दृष्टि भी हुई मुखर
जीवन के फैले बहुविध आयाम
पर तमस् और हिंसा के हाथ
प्रतिस्पर्द्धा और ईर्ष्या का मन
आतक और अत्याचार के भाव
अस्त्रो की प्रहारिक शक्ति के प्रेत
कब हुए मौन
स्वाधीनता का कहाँ मिला मानव को फल
रगभेद, जातिभेद, राष्ट्रभेद से कब हुआ विश्व मुक्त
अभावो मे टूटते प्राणो को कहा मिला
अभयता का वरदान
मात्र रह गया है मानव शताब्दी मे अनर्थवत्ता का अहसास

अनुभूतियों में बहता है सपना मेरा
जीवन में पैठता आता है विषाद-ज्वार
मंदिर प्रतिमाओं के खंडित होते हैं प्रतिमान
दर्पण में देखता
विकृत और अनगिनत परछाइयाँ

नहीं मैं यह
न यह मेरा प्रतिबिम्ब
है यह तो आदम, पशु और
विज्ञान युग के मानव की विकृत छाया
मर्माहत हूँ मैं देख
प्रतिबिम्बित है चेतना के प्राण
आज तो बस अन्धकारमय परिवेश
प्रज्ञा को ढांप लिया है काले बादलों ने
जीवन का ढल रहा है युग का गान

व्यथा है यह कहता कि
है यह विज्ञान और प्रगति का युग
लौट रहे हैं मानव के पैर पीछे
देख रहा है वहीं है जहाँ आदिम काल के विश्व
नग्न, दर अब हो गये पशु मनुष्य
बढ़ी हुआ मानव संस्कृति का
उत्क्रान्तित उद्भव और विकास
इसीलिए करता हूँ मैं
युग की संस्कृति का प्रतिरोध
चाहता हूँ जीवन मूल्यों के नये प्रतिमान
सम दृष्टि है मेरी और विराट् आँखों का भाव
क्षुद्रताओं और संकीर्णताओं में कैसे हो सकता मैं बंद

युग की आखो का अन्धापन मिटेगा जब
तब देख पायेगा इतिहास
स्वर्णिम आगत का प्रभात
सुसस्कृत तो होना है मन को
पर वहा तो प्रेताचार
मुखौटो की सस्कृति और छद्म नैतिकता मे नही मेरा विश्वास
प्रकारान्तर भाव मे जीने के लिए मैं विवश
कहाँ मेरी स्वेच्छिक दृष्टि का लोक
अणु से ब्रह्माण्ड तक का यात्री मेरा युग
किन्तु जीवन दृष्टि के अभाव मे
जीवन मात्र सताप का शूल
विकृतिया ही विकृतियाँ फैली चारो ओर
प्रकृति हो गई स्वय विक्षुब्ध
नाचते प्रलय से सत्ता, सस्कृति और विज्ञान के प्रेत
शताब्दी का मैं मात्र अनस्तित्व
नही झेल पाऊँगा शताब्दी का प्रहार
महाप्रलय से मुक्ति के लिए व्यग्र हैं विश्व की आखें
सवविश्व का जोवन हो प्रभात के सूर्य सा उज्जवल
अस्तित्व हो अथवान और मानव प्रज्ञा-प्राण
विश्व व्यवस्था के सृजित हो
मानवापेक्षी नये प्रतिमान
मेरी जीवन-दृष्टि का यही प्रतिमान और
आत्म-स्पन्दन का मैं विराट् ।

अहं अस्मि का मै परमात्मा

न मैं तक की भाषा
और न मनोविज्ञान की
न मै आध्यात्म की भाषा
और न भौतिक विज्ञान
हूँ मैं तो मात्र मानव की भाषा
जीवन की भाषा, अस्तित्व की भाषा
हूँ मैं तो मेरे अभिप्रेत प्रसगो का प्रज्ञा-बोध
आप खोजते रहे ईश्वर के प्रमाण
और करते रहे ईश्वरीय रूप के लिए सघर्ष
ढू ढते रह आप जादू, मिथक और
प्रकृति मे धम और परम आत्मा के रूप
रिझाते रमै प्रकृति के ग्रहो को और ईश्वर को
मागते रहे वरदान, धन और सत्ता
करते रह किसी काल्पनिक सत्ता की पूजा
और भूनते रहे मानव का मास
स्वाथ और असत्य पर टिका है
जो आस्था का भाव
हो नही सकता वह मेरा आराध्य
मानव की भाषा मे सोचता हूँ
अस्तित्व तत्व के देता प्रमाण
अनुभूति मे हूँ मैं मात्र अस्तित्व
और प्रामाणिक अभिप्रेतो का जीवन उद्गार
मानव को भूलकर किसको पूजते है आत
वही है सृष्टि का परम दिव्य
उसी की प्रज्ञा से रचा जाता है ईश्वर
और जीवन दृष्टि का विधान

धम तो वह है बन्धुओ—
करे जो मानव का कल्याण
दे जो सम की दृष्टि और करुणा का भाव
आज खाता है आदमी को आदमी
भूनता है अन्य का मास
स्वाथ की परिधियो मे भटकता वह
है महातमस की रात
भयाक्रान्त मैं इस तमसाक्रान्त मानव से
टूटती जाती है मेरी आस्थाऐं और विश्वास
रक्तपायी हो सकता है जब आस्तिक
है वह तो तब पूरा नास्तिक
आस्तिकता तो पालती है अस्मिता को
आस्तिकता तो देती है जीवन की आस्था
काल्पनिक की पूजा कर क्यो बहाता
आस्तिक नर-रक्त
कौन सा सत्य है जो बाटता
मन से मन का
आदमी से आदमी को
राष्ट्र से राष्ट्र को
कौन सा सत्य है जो बाटता है
धरती का रक्त
नही यह सत्य
है यह तो मिथ्याचारियो के मानस से उत्पत्तित
महा असत्य
व्यवस्था की दीघ जीण दीवार
लदी है मेरी पीठ पर
प्रेतो का निवास है यह
और गिद्धो ने बना रखे हैं इसमे घोसले

झपट पडने को आतुर हैं ये
नर रक्त के प्यासे हैं ये
इसीलिए तो धम के उन्माद मे
बहती है रक्त की नदियाँ
घृणा और विद्वेष का फैलता है ज्वार
अनन्त यन्त्रणाओ मे फेंक दिया जाता मानव
फिर करते तमस् के प्रेत अट्टहास
सद्भाव हो पारस्परिता मे
प्रेम हो दृष्टि मे
सवहित भाव का सन्नान्वित सोपान हो
सर्व रक्षा की कामना हो मन के आगन मे
तो स्वय ही हो जायेगा
उस धम का उदय
कहता हूँ जिसे मैं मानवता का अक्षत धम
मत रोदो किसी मानव को
काटो मत किसी की गदन
मत करो किसी के जीवन का अपहरण
मत बीधो प्रज्ञा दृष्टि की आख
कैसे ईश्वर होता होगा प्रसन्न
किसी के टूटते जीवन से
है क्या वह रक्तपायी और अन्धा सिद्धान्त
है क्या वह भेदमूलक द्रष्टा सृष्टा
करता है क्या वह तमस् की पूजा अगीकार
नही है क्या उसमे मानव मात्र के प्रति प्रेम
नही है क्या उसमे हित दृष्टि का उन्मेष
ईश्वर तो है उस नियम का प्रतीक
है जो सृष्टि का आदि नियम
कहाँ किन्तु बन्धुओ

अभी सृष्टि का प्राप्त समग्र ज्ञान
धीरे-धीरे खोज रहा है विज्ञान
और काटता जाता है परिभाषाओं का पुरातन ज्ञान
खोज रहा है दर्शन भी सृष्टि का आदि तत्व
बना लिये है दार्शनिक और ऋषियों ने
अपने-अपने काल्पनिक ईश्वर के
भिन्न-भिन्न रूप और तर्क के दुर्ग
बना दी एक कठोर जीवन व्यवस्था
थमा दी हाथों मे फिर झण्डिया
झण्डिया ढो रहे अन्धे गन्तव्य दृष्टि से हीन
कहाँ है सृष्टि और स्व का सम्यक् सत्य
झण्डियो के लिए लडते हैं मानव से मानव
तडपते है अनन्त निर्दोष जीवन
रक्तपान करते है मिथ्याचारी धर्माचार्य
सत्ताएँ करती धर्म से आलिंगन
राजनीति रचाती धर्म का स्वयंवर
जो शक्तिवान है, तमस् है
वह कर लेगा ईश्वर का वरण
कुटिल है समग्र तन्त्र
मिथ्याचारो का है सारा चक्रव्यूह
फसी है नियति इसी चक्रव्यूह मे
मन होता जाता स्व-निषेध का भाव
जब वह है तो मैं कहाँ
मैं तो मात्र अंश अथवा पराधीन
हूँ मैं तो पूर्णाकार मानव
मैंने ही किया है ईश्वर और धर्म के
प्रत्ययो का प्रक्षेपण
क्यो विस्मृत करते हो मानव की सर्वोपरिता की बात

क्यो भूलते हो यह बात कि है वह अस्तित्व का परम सत्य
वही तो दृष्टि, दृष्टा, ज्ञाता और नियति का नियामक
चाहता है वह तो अपने जीवन का योगक्षेम
क्या करेगा वह मायावी आध्यात्म का
जिस पर बैठे ह प्रेतो के पूत
बहाते है रक्त की नदियाँ
मिथ्याचार के मायाजाल मे फसाता मछली
मानव तो चाहता है तमस् और विषाद से मुक्ति
है वह तो स्वाधीन और मुक्ति का आकाक्षी
करो उसे विषादमुक्त
होने दो उसे मुक्त प्रज्ञा की कल्पना
बहने दो उसे चेतना की अविरल धारा सा
मत रोको उसका पथ
मत बाधो उसके प्राण
मत अवरोधो उसका उत्क्रान्तित रूप
उत्क्रान्तित चेतनावस्था मे ही होता है प्रतीत
मानव पूर्णाकार दिव्य
वह ही कर सकता है सजना
उस मानव की, विश्व की
गूँजता है जिनमे सब योगक्षेम का नाद
भेदमुक्त विश्व का हो सकता है वह सृजनाधार
उसी की प्रतीक्षा है मुझे
रचेगा वह ही मेरे अभिप्रेतो का ससार
मेरी बोध चेतना दृष्टि का होता फैलाव
महातरग सी ब्रह्माण्डीय शक्ति देती मुझको प्राण
उसी शक्ति का अग हूँ मैं और पूर्णाकार
अह अस्मि का मैं परमात्मा कितना विराट् !

स्वीकृति

द्वन्द्वो के अतिरिक्त और है भी क्या जीवन मे
सृष्टि मे भी तो क्रियारत है शाश्वत द्वन्द्व
द्वन्द्वो से आक्रान्त है मेरा जीवन
चाहता द्वन्द्वमुक्त भाव का ससार
प्रकाश और तमस् का सघर्ष
शुभ और अशुभ का सघर्ष
होता आया है पृथ्वी पर
खोली है जब मे मानव ने प्रज्ञा आख
मेरा हृदय बना हुआ है रणक्षेत्र
धर्मक्षेत्र के कृष्ण और धृतराष्ट्र सघर्षरत है वहाँ
मैं चाहता हूँ धृतराष्ट्र पर विजय
अशुभ तो वह है जो देता है स्व और अन्य को दश
शुभ वह है जो करता है सर्वहित का गान
प्रकाश वह है जो देता है दिशा, सत्य और जीवन की दृष्टि
तमस् वह है जो फैला देता है सर्वत्र अन्धकार
अन्धकार ही तो फैला है आज चारो ओर
अन्धकार के आच्छादन मे चलता है
आखेटीय खेल
निर्बल प्राणी कापता है भयभीत होकर
देखता है जब वह किसी प्रेतीय जरासन्ध की आकृति
जीवन रक्षा के लिए व्यग्र है हर जीव
आत्मरक्षा के लिए प्रयत्नशील हूँ मैं
शैतान का प्रतिरोधी हूँ मैं
मैं हूँ मेरा अस्तित्ववान् अस्तित्व
क्यो उलझाते हो मुझे माया के तर्क मे
क्यो बहकाते हो मुझे देकर विष

पी जाऊँगा मैं सारा गरल
किन्तु नही होगी मेरी प्रज्ञा वाणी लोप
धम और वाद के उन्माद मे
देखता हूँ मैं नित्य ही नाचते नंगे प्रेत
मत बाधो मानव की आखो पर पट्टी
मत दिग्भ्रान्त करो मानव के जीवन को
फूल सा विकसित होना चाहता है मन
किन्तु कीट और कृमि खाते पखुडियाँ
और पी जाते प्राण-रस
मैं तो रह गया मात्र शून्यवत् शेष
नकारात्मक अभिप्रेतो के दुर्योधन
रचाते सदैव ही चौपड का खेल
जीवन लगा है दाव पर
प्रज्ञावान् और विचारवान् बैठे है मौन
भीष्म तो है परजीवी
विदुर भी है परजीवी
कैसे लेंगे वे न्याय का पक्ष
श्वान तो हिलाते पूछ जब देखते रोटी
समय पर पकड खाते बिल्ली को, चहे को
या फिर अपने श्वान-वशी को
चलता है यह क्रम प्रतिदिन
देखता हूँ मैं आखेटीय खेल
मेरे शरीर को बीध चुके हैं अनेक तीर
खाया है अनेक बार कुत्तो ने माम
भोक्ते हैं वे जब देखते हैं
किसी अजनबी को अथवा अपने ही वशजो को
भोकना कहाँ रुका है अब भी
भोकने की परम्परा है पुरानी

अब भौंकते है- राजनीति धम श्रौर दुर्योधन के वशज
भरी सभाश्रो मे
नही है मुझे इस श्वान सस्कृति से प्रेम
नही है मुझे श्राखेटीय खेल से स्नेह
मेरा श्रस्तित्व तो झूलता है फासी पर
रू धता जाता है गला
श्रौर फैलता जाता है श्राखो मे श्रन्धकार
पता नही शैतान श्रौर ईश्वर साथ जन्मे श्रथवा नही
किन्तु सत्य तो यह है कि श्रब है
ईश्वर निर्वासित
शैतान का है विश्व पर श्राधिपत्य
चाद श्रौर मगल को भी बना रहा है वह
श्रपना साम्राज्य
सत्ता की कितनी मायावी श्रौर क्रूर पिपासा है मानव मे
कि वह कोटि-कोटि जनो का रक्तपान कर
बनता है महान्
होता है पूजित
करता है न्याय
कितनी विडम्बना है यह भाग्य की कि
निर्दोष श्रौर सत्य को लटकाया जाता है
फासी पर
मैं भी श्रधर मे झूल रहा हूँ
फासी के फदे से बधा
जल्लाद कर रहे हैं घडी मे
चक्रित सूइयो से
समय की गणना
थक जायेंगे वे
मान लेंगे श्रन्तत हार

कर लेंगे स्वीकार अपनी पराजय
नही होगा जल्लादो के हाथो से मेरा अन्त
बार-बार विषपान करके भी जीवित रहूँगा मैं
थमाता जाऊँगा क्षण-क्षण के हाथो मे आस्था का विश्वास
मानव मानव के अन्तस् मे है जो प्रज्ञावान् बोध
फैलाता जाऊँगा उसकी झंकार
और करता जाऊँगा उसको जागृत
कापुरूष ही करते हैं प्रेतीय अत्याचारो के समक्ष
आत्म समर्पण और पराजय स्वीकार
कृष्ण और जरासन्ध
राम और रावण
ईश्वर और शैतान
है मानव की अन्त गुहा मे ही
वहाँ चलता रहता है सतत् सघर्ष
न कोई सम्पूणत राम है और न रावण
न कोई सम्पूर्णत ईश्वर है और न शैतान
मानव में शेष बची है अब भी मगल की दृष्टि
चाहता हूँ मैं उसी का विस्तार
अल्पाश का प्रकाश भी चीर देता है
गहन तमस् की परतें
प्रेम और स्नेह का एक शब्द भी
पिघला देता है हृदय
अस्तित्व प्रज्ञा की एक भी ज्योति
जीवन्त कर देती है प्राणो का नभ
उसी प्रज्ञा ज्योति मे आस्था है मेरी
उसी के लिए करता सतत सघर्ष
तमसाक्रान्त है पूरा विश्व
मन-मन मे नाचते दृष्टिगत होते शैतान के पूत

हिंस्र दृष्टि से देखता जब मानव
कांप जाता हृदय और मानवता के समक्ष
खड़ा हो जाता महाप्रश्न
आखिर मानव और पशुओं में होता है कुछ तो अंतर
प्रवृत्तियों और अभिप्रेतों से ही संचालित होता है जीवन
नकारात्मक अभिप्रेत होते विध्वंसक और शून्य के सर्जक
सकारात्मक अभिप्रेत होते रचना और मंगल की दृष्टि
और उत्क्रान्तित जीवन दर्शन के सूत्र
उन्नीसवीं शताब्दी में किया घोषित ईश्वर को मृत
बीसवीं शताब्दी में किया गया घोषित मानव को मृत
कौन दे अब मृतक मानव को पुनर्जीवन
कौन करे मानव में प्रस्थापित प्रामाणिक मानव
यही मेरा अहं प्रश्न
चेतना के सागर में कल्लोल करता मन
चाहता स्व का मुक्त गगन
सृष्टि विभु सा है स्वयं मानव
किन्तु है वह अंतस् गुफा में अन्धा
और मानवता का प्रतिलोम
मेरे शब्द यज्ञ में देता मैं आहूति
करता घोष
पुनर्जीवित हो मानव
करो धरती पर अपनी जयघोष
देखो स्वाधीन आंखों से मुक्त गगन
जो विराट है है वह स्वयं तुम्हारी चेतना
तुम ही ब्रह्मा हो, सृष्टा हो
तुमने ही तो रचाया है संस्कृति, सभ्यता,
ज्ञान और विज्ञान का परिदृश्य
तुम ही तो हो स्व, सत्य और ईश्वर के दृष्टा

किन्तु भूल गये तुम अपना ही पथ,
अपना ही रूप/अपना ही सत्य
हो गये तुम स्वय ही शून्य
प्रकाश से मूद ली आँखें
तमस् म करते क्रीड़ा
अन्य के प्रति भूल गये दायित्व
नहीं रहा मन मे स्नेह का रस
मात्र परोदो की चिन्ता और विराट् हित भाव के प्रति क्रूर
तभी तो बन गया है यह विश्व
ध्वनेटीय विश्व
युद्ध सस्कृतियों का यहीं हुआ अन्त
विध्वस के भावो का यहीं हुआ मुह बन्द
विराट् मानव से बढे अब भी चरण
तो हो सकता है
विश्व महा अपवग
मत होने दो खण्डित बन्धु
अस्तित्व भावो की प्रतिमा
मत टूटने दो प्रभा की मूर्ति
अश-रूप का प्रकाश ही काफी है देखने को
दपण मे अपनी स्वाकृति
देखो तो उसे- वह है कितनी दिव्य ।।

अभगित सा पूर्णाकार

शुद्ध भाव चेतना ही देती मुझको सुख
शुद्ध चेतना ही है मेरा परम अस्तित्व
इसी भाव भूमि पर जीता मैं
रचता मैं मेरे शब्दो मे मेरा प्रतिरूप
उन्मुक्त भाव सा वहता शब्दो का प्रवाह
रोम-रोम मे पुलकित स्वकीय अह
आत्म भाव मे प्रवाहमान् आनन्द का निझर
आत्म-रस मे डूबी मन की आख
स्नेहामृत का करता मैं पान
दृष्टि का होता अहर्निश विस्तार
विराट भाव के विभु सा मैं शुद्ध चैतन्य ब्रह्म

मुक्त मन होना स्वय परमात्मा
स्वाधीन मानव होता स्वय स्व अह
आप्तकामी मैं/स्वकामी मैं/मगलमय विश्व के देखता स्वप्न
जीवन हो अपवर्ग/स्व स्फोट का नाद
आत्म प्रज्ञा की ज्योति से हो प्रकाशित विश्व का नभ
मानव मानव हो आनन्द की धारा
मन-मन हो अमृत सा गीत

मन की गुफा का तमस् हटे तो
हो स्व दिव्य से भेंट
विश्व वने तव सम और सर्वोत्कर्ष का लोक
जीवन हो आत्मलय और स्वलय की अखण्डित तान
तभी तो होगा मानव अभगित सा पूर्णाकार।

विस्तृत लोचना दृष्टि की

कल्पना तो करो आप कल्पना
कल्पना मे देखो तो स्वर्णिम स्वप्न
हो सकता है कल्पना करते-करते
हो जाय विश्व सबके लिए
कल्याणप्रद ममतामयी धरती
परिवर्तित हो जाय स्वत आपका स्वरूप
बदलाव की तरगें अतम मे प्रवाहमान् होती है
क्रिया, इच्छा, सकल्प के त्रिभुजाकार रूप मे
कर देती है मगल की सृष्टि
कल्पना मे क्या जाता है बन्धुओ
कल्पना तो स्वप्नो की दृष्टि है
आगत की रचना है
भयावह आता प्रतीत होता मुझे भविष्य
अभिशप्त है जीवन का भाव, दमित है अनुभूतियो का वक्ष
विश्व हो गया है मेरे लिए महातमसी कारागृह
उन्माद और स्वार्थ के चक्रवातो मे टूटता है विश्व का नियतिपोत
असख्य आखो मे फैला है विषाद का जल
द्वन्द्वो और अभावो मे घूर्णित होते-होते हो गया है मन क्लान्त
और/अस्तित्व क्षयाक्रान्त
नही शेष बचा है स्व प्राणो का सवेदन
परकीय भाव बोध मे जीता-जीता मैं हो गया हूँ
स्व से निर्वासित
विश्व मे नही है मेरे लिए दो इँच भी भूमि
दुर्योधन तो दुर्योधन है
किन्तु क्या करूँगा जुआ खेलने वाले युधिष्ठर का भी
करवा दी जिसने द्रौपदी को निवसना

नगी देह सा मैं भी खडा हूँ चौराहे पर
गुजरती जाती है चौराहे से भीड
स्पन्दनहीन हैं उनके हृदय
देह और तमस् तक सीमित हैं उनकी आखें
तमस् मे ही जीने की है वे अभ्यस्त
प्रकाश से हो जाती है वे भयग्रस्त
क्रूर मायाचार है उनके मन मे
इसीलिए तो गगन का स्पश करते जाते है प्रेतो के स्तूप
सत्रस्त हूँ म/अभिशप्त हूँ मैं/
नगी देह चौराहे पर खडे-खडे थक गये है पाव
सूझता नही मुझे मेरा अभीष्ट पथ
दृष्टिगत नही होता मुझे मेरा नियति नभ
मेरी अतडियो से चिपके ह सप
आखो मे इतिहास और युग से आक्रान्त मनुवशजो के आसू
वाल्मीकि सा बोल रहा है कोई
करूण कवि मुझमे
देखता है वही आगत के स्वप्न
समष्टि हित मे ही है स्व का हित
समष्टि आनन्द मे ही पुलकित होता है मेरा मन
समष्टि और व्यष्टि का द्वैत ही
मन की कारा
और/आखो की परिधियो का सकोचन
क्यो नही हो विस्तृत लोचन
विस्तृत लोचना धरती होगी
हमारे अस्तित्व का पृष्ठ देश
करो बन्धुओ कल्पना उसी विस्तृत लोचना दृष्टि की।

अस्मिता दर्शन की अगुवाई है

भीड मात्र भीड है
जो चलती है, भागती है
जीती है होकर अस्मिता ज्ञान से शून्य
भीड मात्र एक मानवाकृतियो का समूह है
नही है जिसे अपने होने का बोध
जिसकी आखे तमस् मे खोयी रहती है दिन-रात
भीड जिसे मात्र अपनी देह की चिन्ता है
सवेदना से शून्य है
भीड जो हवा मे उछाले नारों को पकड कर पालती है
मानो वे हो देवदूत
भीड है इसीलिए तो तमस् के प्रेत हैं
अधे युग की दृष्टिहीन आखे है
भीड के नही होती है आख/नही होती है प्रज्ञाशक्ति
होती है वह तो
तमस् की पताकाओ को ढोने वाली
पाषाणवत् शिलाखण्डी भीड
भीड है इसीलिए सत्ता और धम का प्रपच है
अन्याय और आतक का साम्राज्य है
भीड उन्माद है / पथराई चेतना है
स्व को विस्मृत कर
जीवन की झझा है
भीड मे व्यष्टि चेतना की इकाई कहाँ
वह तो मात्र समूह तत्र की बरगलाई वाणी है
भीड मात्र भीड है
देह और पेट का भूगोल है
आखो पर पट्टी बाधे

अन्य का अनुगमन है
– अन्य जो सत्ता का पिपासु है
धम का ठेकेदार है
व्यवस्था का मायावी प्रेत है
भीड तो चलती है पीछे उसके
जिसके हाथो मे जितने मायावी अस्त्र है
भीड गू गी है, बहरी है
भीड उन्माद मे मरती है और मारती है
भीड जो वायदो और नारो से पेट पालती है
और अस्तित्व को काटती है
इसीलिए तो खण्डित है नियति की धरती
प्रेताचार/मायाचार के गगनस्पर्शी स्तूप ह
इसीलिए तो जीवन दृष्टि तम्स् से अभिशप्त है
स्वाधीन होकर भी भीड परतन्त्र है
अस्मिता होकर भी अर्थो से है शून्य
प्रकाश से डरकर तमस् मे सोती है
भीड से पृथक हूँ मैं
नही है भीड का पथ मेरा पथ
अस्मिता और स्व की प्रज्ञाचेता दृष्टि का
मैं हूँ शाश्वत् पक्षधर
भीड जब भीड न होकर
होगी जब स्व की व्यष्टि-समष्टि चेता इकाई
तभी विश्व की धरती पर
होगा उद्भव नव्य युग का सूय
अपने को भूली भीड मेरी उबकाई है
समूहशक्ति मे स्व जागृति ही
अस्मिता दशन की अगुवाई है।

आस्था के शिलालेख

मेरी शताब्दी ने दिया ही क्या है मुझे
भय और सशय को छोड़कर
धुआ, पावन, एसिड और अणु अस्त्रों के अतिरिक्त
मिला ही क्या है मुझे इस शताब्दी से
प्रौद्योगिकीय यत्रो मे फस गया है सारा जीवन-दर्शन
भय और सशय मे डूब गई है आगत की आगे
न रहा मैं स्वय का उत्फुल्लन
न प्राणों का सहज हास
नही शेष है जीवन मे जीवन का रस
फेफड़ो को काटता है विषाक्त परिवेश
गले मे फसा है युग होकर सूखी हड्डी
चूसता हूँ मैं मेरा ही रक्त
प्रतियोगिता के युग मे सब हो गये प्रतिस्पर्द्धी
हर चेहरे को देखता मैं शकित दृष्टि से
न शेष बचा आस्था और विश्वास का बोध जीवन मे,
न प्रेतीय अन्य मे
और/न अन्धे युग के दृष्टिहीन नेत्रो मे
भय की भावना से आक्रान्त है प्राण
सूखता है जीवन-रस
निराशा का भाव घेर लेता जीवन का आकाश
मात्र सत्रास/घुटन और सघर्ष मेरा प्राप्य
मैं अनुभव करता हूँ कि मैं हूँ मेरा ही अभाव
स्वय का निषेध करके कैसे बच सकता है मेरा अस्तित्व
हर क्षण पर होते प्रहारो को कितना झेलूँगा मै
झेलता हूँ/झेलता रहूँगा
टूटता रहूँगा/सभलता रहूँगा

खोजता रहूँगा अपनी मुक्ति का पथ
ढूंढता रहूँगा यन्त्रणामुक्त जीवन के मार्ग
मैं हूँ मात्र सम्भाव्य की आखें
निश्चित तो है मात्र वर्तमान
किन्तु कितना उखडा उखडा है वर्तमान का क्षण और रूप
दिशा संकट से ग्रस्त है विश्व यात्रा का रथ और पथ
सत्य, शिव और सौन्दर्य हो गये जड
श्रेयस और अस्तित्व सर्ग की पथरा गई आखें
जीवन मात्र सत्रासानुभूति का महाराग
तमस् के पयोद आच्छादित कर रहे हैं नभ
ईश्वर के लिए होता अब भी सघर्ष
धर्म की चेतना मे फैला विकृत बिम्ब
विज्ञान की आखो मे मात्र विश्लेपण और भौतिकता
तर्क केवल बुद्धि का खेल
जीवन न तर्क/न भौतिकता और न आध्यात्म
जीवन है मात्र जीवन/चेतना का क्रिया व्यापार
चेतना के होते है अपने नियम/अपनी गति और अपने धर्म
चाहती चेतना मात्र स्वस्थिति और स्वनियम
सत्ता के नियमो मे नही कैद
आप्त वाक्यो मे नही है मेरा विश्वास
मैं तो हूँ मेरे अस्तित्व और जीवन का स्वप्रमाण और प्रकाश
चाहता हूँ स्वचेतना का उत्क्रान्तित पथ
चाहता हूँ आनन्द के रस मे शाश्वत् अवगाहन
लय की लयता होती है जीवन की लयता
लयता मे ही होता है सगीत का नाद
विस्फोटो, भूचालो से कापता मन
धरती, तन और मन सब प्रदूषित
प्रलय का भय तोड देता भविष्य का भाग्य

आघातो से है जीवन आक्रान्त
बीसवी शताब्दी का मैं कितना असहाय
एक तरफ चढता आदमी चाँद और मगल पर
दूसरी तरफ होता जाता वह मन मे बौना
विकृतियो की परछाइयो मे खो गया है
उत्क्रान्तित अस्तित्ववादी जीवन दशन
करता हूँ मैं सतत् उसी का अनुसधान
चक्रवातो मे डूब गया है नियति पोत
अन्धकार से सघर्परत है मेरी आखें
इक्कीसवी शताब्दी का देखता मैं स्वर्णिम स्वप्न
क्यो नही घोपित कर दिया जाता विश्व को सर्वथा स्वाधीन
क्यो नही हो जाता एक विश्व का स्वप्न साकार
भेदातीत चेतना कब मानती भेदो का ससार
स्वाधीनता कब होती शाश्वत गुलाम
अस्तित्व को विस्मृत कर कब तक जी सकता मानव
जीवन और मानव को ठुकराकर
कब हो सकता युग महान्
मेरी दृष्टि तो केन्द्रित है आगत पर
भावी युग के हाथो मे थमा देना चाहता हूँ मैं
आस्था के शिलालेख ।

वेदनाख्यान

कोलाहल, वायु प्रदूषण
मन प्रदूषण, जीवन प्रदूषण
विकृतियों मे जीता-जीता मैं हो गया हूँ
मन, भाव और काया से क्षीण
अस्तित्व की शान अब हो गई व्यर्थ
मन मे गू जते मात्र कोलाहल और प्रेतीय भाषा के शब्द
ऐंठती जाती जीवन शिरायें
मन मे विक्षोभ
प्रकृति में विकृति आहूतेगी स्वय महाविध्वस
कैसी है विज्ञान और सत्ता की जड आखे
कैसा है मानव का स्वार्थ और विकृत भाव
कि करता है वह स्वय ही
प्रकृति को विक्षुब्ध और जीवन को अभिशप्त
करना होगा विज्ञान को मानवापेक्षी
देना होगा प्रौद्योगिकीय सस्कृति को जीवन का मत्र
करना होगा मानव को जागरत
और सत्ता को सावधान
नही रुका यदि विकृति का चक्रवात् तो
निश्चित है महाविध्वस
और मानव का अन्त
बचेगा शेष फिर--
मानव महाकाव्य के उपसहार का
महाशून्य मे विलीन होता
वेदनाख्यान।

स्व-सृष्टि का महाराग

प्रकाश की एक किरण ही पर्याप्त है
सृष्टि के महातमस् को चीरने के लिए
आस्था का एक स्वर ही पर्याप्त है
अनास्था के कोलाहल को भेदने के लिए
आस्था और विश्वास ही है मेरे जीवन के सम्बल
इन्ही का हाथ पकडे चढता जाता हूँ मैं
उत्क्रान्तित जीवन के पथ पर ऊँचा
स्पर्श करता हूँ अब स्वबोध के शिखर
देखता जाता हूँ उत्क्रान्तित विश्व के स्वप्न
फैलता जाता है प्रज्ञा का आलोक
टूटता जाता है महातमस् का दुर्ग
विश्व का इतिहास रहा है अन्धा/निराशा मे डूबा रहा है भाग्य
मानव मानव न होकर रह गया है अपनी ही पहचान का विलोम
शून्य भाव मे तैरते क्यो युग के प्राण
परित्राण, परित्राण पुकारता युग आर्त्त
दिशायें पुकारती– रक्ष, रक्ष
तमसाक्रान्त युग मेरा अभिशाप
नही अगीकार है मुझे मेरा प्रतिलोम
स्वीकृति हूँ मैं/स्वबोध का आत्म ग्रह हूँ मैं
जीवन की आस्थावान् दृष्टि हूँ मैं
मैं हूँ मेरा ही जयकार
न मुझे किसी पताका मे आस्था
न किसी सत्ता मे विश्वास
अस्तित्व सत्ता सत्य के अतिरिक्त और सब भ्रमजाल
मानव अस्तित्व का गायक मैं
स्व-सृष्टि का महाराग।

मै का महाख्यान

जीवन एक दृष्टि का नाम
जीवन एक सृष्टि का नाम
जीवन सृजन की आखें हैं
है जीवन अस्तित्व सगीत का स्वर और ताल
खोजता मैं जीवन की अथवत्ता की धरती और मैं का उल्लास
जीवन स्वप्न है, जीवन यथार्थ है
जीवन आशा है, निराशा है द्वन्द्व है, सघर्ष है
जीवन मात्र जीवन है
चेतना का गतिमय प्रवाह है
कल्पना, प्रज्ञा, इच्छा, सकल्प का
है स्वनिर्मित इतिहास

सामने खडे हैं बाधाओ के ज्वालामुखी
सामने अडे हैं प्रेतो के योद्धा
विपम युग मे भटके प्राण

जीवन के अर्थो को खोजता है मेरा आत्म-ग्रह
बढना चाहता हूँ मैं क्षण-क्षण आगे
सहस्र रश्मियो सा होना चाहता हूँ प्रकाशवन्त
बनना चाहता हूँ मेरी भावाकृति
होना चाहता हूँ मैं धनात्मकता की स्वीकृति
जीवन हो मेरे अस्तित्व का उल्लासपव
जीवन मेरी कविता है/छद है/शिल्प है
भाव-विचार का गगनस्पर्शी शिखरबन्द है
है कविता मेरे मैं का महाआख्यान ।

जीवन का अमृत-छंद

मैं तो करता हूँ मात्र जीवन की बात
खोजता हूँ क्षण क्षण आस्था का आकाश
मेरी दृष्टि तो फैली है जीवन के फैलाव पर/सृष्टि के विस्तार पर
मेरी सृजना दृष्टि मे व्यक्त होता है मेरा मैं
क्या है जीवन के पूर्व/क्या है मृत्यु के आगे
नही जानता मैं
हैं ये मात्र अनुत्तरित प्रश्न
उत्तर दे भी कौन जब आँखें ही है
दो अपारदर्शी चट्टानो के मध्य कैद
तत्व, धर्म और भ्रम के द्रष्टा
करते हैं अनेक-अनेक वादो की प्रस्थापना
बाध देते हैं जीवन को अन्धी कारा मे
ठूस देते हैं प्राणो मे कोई काल्पनिक अन्य और सत्य
फैल जाता है वह मेरे बोध धरातल पर
सोख लेता है मेरा सहज अस्तित्व, ज्ञान और बोध
छा जाता है मेरी जीवन-दृष्टि पर फैलाकर
असत्य और तमस् के पख
देख नही पाता हूँ मैं फिर मेरा स्वाधीन मैं
पराधीनता कर देती है मुझे स्व से पराङ्मुख
चेतना हो जाती है अन्याकार
मेरा अस्तित्व हो जाता है परकीय बोध
हो जाता हूँ मैं मेरा ही शून्य और विलोम
मेरी भाषा ही है मेरा दर्शन, मेरी नीति, मेरा मूल्य
मेरी भाषा ही है मेरा भाव और अस्तित्व
जीवन है तब तक हूँ मैं
चाहता हूँ इसी की सार्थकता,अर्थवत्ता और मैं का प्रामाणिक बिम्ब

पी लेना चाहता हूँ जीवन को करके अमृत
रच लेना चाहता हूँ अपने मैं का इतिहास
विश्व की परिधियों में तपता है मन
प्रगति के रुक जाते है चरण/स्वगति होती भग
जीवन का अमृत सूखता क्षण-क्षण
चेतना को डँसते अन्य से विषधर सर्प
विष की सवेदना से मूर्च्छित मन
जीवन होता जाता क्षण क्षण अभिशाप

पसरा पड़ा है युग होकर वक्राकार
न सीधा पथ/न सहज गति
न नैसर्गिक जीवन/न जीवन के पुलकते प्राण
कृत्रिमता/धुआँ/मुखौटीय सस्कृति
सम्बन्धो मे नाचते प्रेताचार
सृष्टि के प्रपच मे घूमता धूमकेतु सा मन
शून्य म झाकती मैं की परछाई
कहा स्वस्थिति का शाश्वत ज्ञान

विज्ञान, तर्क, मीमासा, सत्ता व्यवस्था और अन्धे कूप
तमस की परिधियो मे भटकता रहा विश्व का युग और इतिहास
भ्रमो के विवर्त्तों मे दृष्टि कैद/सूख गया मन का शीतल तट
तपती धरती पर जलता मनोदैहिक मैं का अस्तित्व
नही सहन होता तमस् का प्रहार और आतक का दश
जीवन ही यदि है यत्रणा/शून्य और अनास्था तो
क्या है इस सृष्टि और अस्तित्व का अर्थ
जानता हूँ मैं कुटिल चक्रो के मन्तव्य
चाहता हूँ मुक्ति
और जीवन का अमृत छद ।

मेरा स्वप्न

वन्धुओ-
समझो तात्त्विक मघप का अथ
समझो अस्तित्व की वेदना की भापा का तात्त्विक मम
सृष्टि के आदि प्रश्न की बहस मे मत उलझो
मत भटको तमस् के गलियारो मे
जो कुछ सत्य है वह है मानव
वही है सृष्टा, द्रष्टा, प्रज्ञा और सृजनकर्ता
वही है भापा, ज्ञान, विज्ञान और सस्कृति का उद्भवक
वही है सत्य, नीति और सूत्रो का द्रष्टा
किन्तु भूल गया वह स्वय ही अपना पथ और अस्तित्व
खो गया वह दिग्भ्रान्त गुफा द्वारो मे
तिलस्मी महल खडे हो गये है चतुर्दिक
जीवन दृष्टि हो गई है अन्धी
मात्र स्वाथ, असत्य, मायाचार और प्रपच के लिए सघर्ष
अस्तित्व के अह प्रश्न हो गये दूर
देह से चेतना का सूय टूटकर जा पडा दूर
भीतर का अन्धकार ही मन का शत्रु
भौतिक प्रकाश मे फिर कहाँ परित्राण
सुरक्षा के लिए खोजे जाते है
अन्धे सुरक्षा दुग
नियति के रचे जाते है अन्धे विम्व
कहाँ भला फिर जीवन का स्वर्णिम प्रतिविम्व
मेरी मानो तो तोड दो तमस् की दीवारें
रच दो एक योगक्षेम का विश्व
वढे आ रहे हैं तमस् के हाथ
मैं भयाक्रान्त

सुरक्षा की धरती खोजता हूँ मैं
किन्तु चारो ओर फैला है प्रेतीय ज्वार
भ्रम और सत्ता मे अन्धा मन
स्वार्थ और हिंसा मे खोया विश्व
तमस् मे भूल गया मानव अपना अस्तित्व
दिशाहारा युगचक्र मेरा अभिशाप

समझता नही कोई अब जीवन, मानव और सत्य की भाषा
विश्व के तमस् मे डूब गया जीवन का अर्थ
मेरा तो सरोकार है जीवन से
न्याय से, मानवीय प्रकृति और सवेदना से
नही मुझे सृष्टि से परे के प्रपचो से मोह
लेता हूँ मैं तो मानव और जीवन का पक्ष
करता हूँ उद्घोषणा कि
मैं ही सत्य, विभु और ब्रह्म
मैं ही शिवत्व, ब्रह्मत्व, अस्तित्व, सौन्दय और आनन्द
चाहे विश्व के मानव समवेत
तो बन सकता है यह विश्व
जीवन का अपवर्ग
उसके लिए प्रयासरत है मेरा भाव-लोक
घुट रहे है अभी तो यत्रणातिरेकता मे मेरे प्राण
फिर भी केन्द्रित हैं आखें कल पर
हो सकता है कल का सूय हो
मेरा सूय
आपका भी बन्धुओ, आपका भी
समष्टि हित ही तो है मेरा स्वप्न ।

प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सव

उन्माद, युद्ध, हिंसा और आतक से है मुझे घृणा
अत्याचार, दमन और प्रेताचार से है मुझे वितृष्णा
टूट जाता है मेरा अस्तित्व दब कर इनके नीचे
रह जाता हूँ मैं मात्र अस्थि ककाल
और जीवन मे शून्यवत् भाव
बहती है नर-रक्त की नदिया
करते है धम, सत्ता और प्रेत इनमे स्नान
पी जाते हैं मानव का उष्ण रक्त
करते है फिर धम, सत्ता और ईश्वर की जय-जयकार
कैसा है यह विश्व का क्रूर विधान
कैसा है यह मानवता के प्रति घोर षड्यत्र
आदमी को नही मालूम–
क्या है ईश्वर, सत्ता और धम का प्रामाणिक स्वरूप
वह तो परायी परछाइयो और परिभाषाओ का करता है अनुगमन
नही ज्ञान उसे अपने ही अस्तित्व और सस्कृति का
है वह तो मात्र स्व का अनस्तित्व
खौफनाक है यह सारा कुचक्र
आदमी के खिलाफ शाजिस करता है
अन्धा आदमी और धम तथा सत्ता के प्रेत
महाषड्यत्र मे फसा हूँ मैं
चलाना चाहता हूँ प्रेतीय विधान पर महा-अभियोग
आरोप-पत्र है यह मेरा
कर देना आप इसका इतिहास मे उल्लेख
कही ऐसा न हो जाय कि
रह जाय विकृत नगा यथाथ अनचिन्हा
और/विकृतियो के प्रतिबिम्बो मे झाकते प्रेत

मानव हूँ भाई मैं तो
करता मानव सी बात
नही मुझे रक्ताभ इतिहास से प्यार
ठुकराता रहा हूँ सदैव ही निर्मम सिंहासन
करता रहा हूँ सदैव ही न्याय की बात
करता हूँ उस युग की कल्पना
जब न रहेगा युद्ध, न आतंक
न रहेंगे नररक्त के प्यासे प्रेत और दानवी मन्तव्य-
रहेगा मात्र मानव भाव का अक्षय दीप
गूंजेगा सिर्फ मानव समता का संगीत
बहेगा तब जीवन मे अमृत का निर्झर
नृतित होगे तब मानव के प्राण
मेरी कविता का तो है यह घोषित उद्देश्य
सत्य, शिव, सुन्दर की करता मैं खोज
करूं क्या जब चारो तरफ है
मन मन मे तमस् व्याप्त
सिवाय इसके कि करूं मैं वेदनोच्चार और फिर प्रतिकार
उत्क्रान्तित भाव चेतना ही होगा वह लोक-
नई व्यवस्था का जन्मेगा जहाँ प्रज्ञापुत्र और नियति सूत्र
इतिहास की गिलाजत से नही उबर पाया हूँ मैं अभी
युग के नंगे प्रेत से नही मुक्त हूँ मैं अब भी
इसीलिए करता हूँ इनका निषेध
तराश रहा हूँ मानव की मूर्ति
करूंगा कल उसका अभिषेक
प्राण-प्रतिष्ठा महोत्सव मे सादर आमन्त्रित हैं आप।

क्यों मन भयभीत ?

मानव खोजता है सदैव ही सुरक्षा का पथ
ढू ढता है जीवन का स्वर्णिम नभ
आत्म-लय ही होती है जीवन का छद
अभयता ही होती है आनन्द का उत्स
मुक्ति चाहता मन सदैव तमस् के बिम्बो से
जीवन चाहता सदैव ही सतापमुक्त मन
किन्तु जब मैं सोचता विश्व की बात
अपारदर्शी तमस् और विश्व प्रकृया के सामने ठिठक जाते पाव
होता प्रतीत है यह कोई मायावी प्रेतघर
सघष/तनाव/कुण्ठा का बहता महाज्वार
अभाव और विषाद मे डूबा जीवन भाव
युद्ध, आतक और पाशविक अभिप्रेतो मे सिसकते प्राण
लयहीन जीवन/छदहीन विश्व/असम धरती पर फटते चलते पाव
ज्वालामुखी सा धधकता यह विश्व
अणु अस्त्रो की भयद् छाया मे कापता मन
कल सिर्फ एक प्रश्नचिन्ह
अब और आज मात्र सताप
यत्रणा के महासिन्धु मे जीवन कैद
मानव ही हो गया अपना अन्धा भक्षक
मिटाता अपना ही पथचिन्ह और अस्तित्व
स्वार्थ और सत्ता/भोग और लोभ मे
भूल गया जीवन के समीकरण
नही दे पाया युग विश्व को सुरक्षा का विश्वास
अब भी चाहिए न्याय के लिए अस्त्रशक्ति
अस्त्रशक्ति मे कहाँ न्याय
मानवगुहा का हिंसक दैत्य हुआ कहाँ शान्त

जीवन हुआ कब महानन्द का राग
विश्व मेरे लिए मात्र सताप की आग
त्रास्त आखो से देखता नभ/विकृत परछाइयो मे दौडता प्रेत
मन मे भय/जीवन मे ज्वार
युग सस्कृति और विज्ञान के आगे खडा मैं एक प्रश्नचिन्ह
पूछता मैं युग और विज्ञान से
कहाँ हुआ है बोलो- मानव का मन उदात्त
खगोलीय विज्ञान दृष्टि मे कहाँ हुआ है मन ब्रह्माण्ड सा विस्तार
सकीर्ण घरोदीय परिधि मे बन्द है मानव के प्राण
तोड दो सकीर्णता की दीवारें
हो जाओ घरोदीय परिधियो से मुक्त
विश्व श्रेयस् के रचो नये मूल्य
दो मुझे एक आतकमुक्त विश्व
खण्डित है अभी जीवन की आखें
भगित है अभी मानव का अस्तित्व
प्रेतीय ज्वाला मे धधकते हैं मेरे प्राण
चाहता सयुक्त राष्ट्रसघ की बहुमजिली इमारत पर फहराना
उत्क्रान्तित मानव चेतना का ध्वज
विभक्त मन और विश्व मेरा अभिशाप
बहता यहाँ से सतापो का तपता कोलतार
यही है वह स्थिति जहाँ कैद है नियति और विराट् के बोध
चाहता हूँ एक विश्व का एक विधान
चाहता हूँ मानव श्रेयस् का मगल विश्व
गाता हूँ मैं शुद्ध मानव के गीत
गाता हूँ/गाने दो/क्यो मन भयभीत ?

प्रकाश की सद्योजात रश्मि लेकर आओ

आओ मित्रो, आओ
युग-सीमाओ के प्रस्तरो पर अपने आलेख अंकित करके आओ
ताकि पहचान बनी रहे बराबर कि
हमने तो चाहा था मुक्त नभ
अविभक्त धरती/पूर्णाकार मानव
चाहा था हमने तो विपाद अभाव-मुक्त जीवन
और जीवन चेतना का उद्भासित आकाश
सोचा था विज्ञान की शताब्दी देगी हमे
प्राण-प्रज्ञा का पुलकित विश्वास
किन्तु मिला हमे धुआ, कार्बन, विष और सताप
मिला हमे तो टूटा अस्तित्व और घहराता भय
मागा हमने जीवन, शान्ति प्रेम और
सहगीत का विश्वजनीन उल्लास
चाहा हमने तो अभाव तनाव-कुण्ठा मुक्त मानव
पर मिले हमे तो अणु अस्त्र, आतक और विकृत परिवेश
कैसे जी सकेंगे हम इस युग यत्रणा मे
सोचो मुक्ति का कोई नया पथ
कर दो उल्लेख सीमाओ के प्रस्तर खण्डो पर
कि युग से है हम निर्वासित
नही है युग प्रामाणिक जीवन का उद्घोषक
मानव पर होता है शाश्वत अत्याचार
हतप्रभ सा जीवन/नियति असहाय
कितनी क्रूर यत्रणा है बन्धुओ
धधक्ते है अब युग के प्राण
स्व सज्ञा की सस्कृति के अभाव मे मैं शून्य
घोर तमस् मे आओ, प्रकाश की सद्योजात रश्मि लेकर आओ

दिव्य-सूर्य

बीसवी शताब्दी का मैं कितना असहाय
विज्ञान और प्रौद्योगिकीय सस्कृति के समक्ष मैं कितना बौना
मानव विजय का गा नही सकता गीत
सवत्र है पराजित मानव की इच्छा और सकल्प
नही शेष बचा आदमी का स्व और मूल्य
पदार्थाकृति मानव मे कहा प्राण-चेतना
गुफावासी दरिन्दा हो गया है स्वाधीन
टट गये हैं मानवता के तट और कूल/बन गया जीवन स्वय शूल
खण्डहरो मे नाचते अतीत के प्रेत
साम्प्रतता मे होता जाता मैं सदभहीन अस्तित्व और शून्य
जीवन के अर्थो मे नही अब रस-भाव
सवेदनाहीन युग मे मन पापाण
भाव की चेतना मे नही अमृत सा बाध
आत्मवत मैं किन्तु निरुपाय शू'य मे डूबता भाव
आधी-अधूरी परिभापाओ मे कैद सत्य
खण्डित दृष्टि मे कहाँ पूण स्व और ब्रह्माण्ड
हो गया ब्रह्माण्ड अब अन्धा नियम
काबन से जन्मा प्रकाश देता अब कालिमा और धुआ
कोलाहल/प्रदूपण/विप भरा नभ
प्राणो के समक्ष खडे अनेक प्रश्न
क्या कहूँगा मेरी शताब्दी मैं
आगत शताब्दी को
सिर्फ यही न कि मैं तो बीसवी शताब्दी का अभिशप्त मानव
किन्तु आगत इक्कीसवी शताब्दी रहना सावधान
अन्धे अतीत से मुक्त होकर
रचना अपने ही स्वप्न

मानव का करना सम्पादित योग और क्षेम
पदार्थ मे नही जीता मानव
जीता है विषयी अह् के अतस् मे
उसी को करना शुद्ध और प्रबुद्ध
बहेगी वही से धरती पर अमृत धारा
होगा उसी मे मानव अमर भाव प्राण
औद्योगिकीय सस्कृति की विकृतियो से होना मुक्त
मानव की दिव्य सस्कृति का करना उद्घोष
और हाँ देखना
टूटे नही मानव का अस्तित्व
अविरल विकसित होता रहे जीवन-पथ
पूर्णाकार हो मानव का मन
खण्डित अशो के भावो मे
कहाँ सृष्टि और स्व का परम ब्रह्माण्डीय पूण कोण

स्व है स्वय ही चेतना
चेतना है सार्वभौमिक और कालातीत
मन का फैलाना नभ
रचना जीवन के नये समीकरण
मुक्त मानव का करना यशोगान
हर जीवन हो अभय और सतापमुक्त
हो मानव स्व का पूर्णाकार बिम्ब

मेरी शताब्दी मे तो फैला है तमस्
अतीत के अन्धे प्रेत फिर हो रहे हैं वाचाल
रहना तुम तो इनसे सावधान और दूर
रचना प्रकाश का दिव्य सूय ।

मूर्ति को पूर्णाकार

शताब्दी के शिलालेख पर अंकित है मेरी खण्डित मूर्ति
आंखों से बहता है रक्त और हथेलियों में घुसी हैं कीलें
चारों तरफ फैला है ताजा रक्त
मन में फैल रहा है सन्नाटा
शताब्दी के क्षण क्षण परिवर्तित होते इतिहास में
हो गया मैं शून्य
नहीं शेष बचा मेरा पूर्णाकार रेखांकन
खण्डित अहं/खण्डित अस्तित्व और खण्डित चेतना
जीवन दृष्टि के सामने पसर गया धुंआ और अणु बम

मन हो गया खिन्न
पराजय की देहरी पर खड़ा मैं
बांधता हूँ फिर विश्वास का बोध
करता हूँ एक नये संघर्ष का प्रारम्भ
अस्तित्व संघर्ष शाश्वत और सार्वकालिक धर्म
जीवन सहज जीवन भाषा का नाम
कृत्रिमता में उलझ गया गति-चक्र
नैसर्गिक सहजता हो गई दिशा-क्रम में खण्डित
जीवन में घुस आया गहन तमस्
स्व के आलेख पर नहीं अब रंग और रोगन
हो गया मैं खण्ड-खण्ड और खण्डहर
खण्डों के बिम्बों से रेखांकित करदी
मैंने मेरी मूर्ति
यही है मेरे यथार्थ की प्रतिकृति
है क्या आपकी नजर में शिल्पकार
जो बना दे मेरी मूर्ति को पूर्णाकार।

क्यों हो काष्ठवत् निष्प्राण

सूख गये जीवन के तट कूल
मन मे फैला गहन सन्नाटा
क्षीण मन से थामे मैं मेरे अस्तित्व का नभ
अंतस् म उद्वेलन और आलोडन
घूमता क्षण क्षण युग का परिदृश्य
टूट गई है मेरी धुरी
सौर मण्डल से टकराता प्राण-रथ
शून्य सा तैरता है मन मे विश्व का खगोल
नि सीम निराशा मे डूबे प्राण
पराजय के कगार पर खडा मैं
खोजता मुक्त और आस्था का जीवन पथ
जीवन से बाहर कहा दशन और मनोविज्ञान
मन के बाहर कहा प्राण
आत्म सग मे हो गया है अब छेद
घुस रहा है उसमे गहन नैराश्य का अन्धकार

मुझे नकारने को तत्पर है युग
इतिहास कर देता है मुझे अनस्तित्व
जीवन भाषा मे रचता मैं मेरे रक्षा-मत्र
अस्तित्व अह की रचता मैं मूर्ति
नियति के खोजता स्वर्णिम बिम्ब
अस्तित्व भावो भव युग के मानव
क्यो हो काष्ठवत् निष्प्राण ?

अस्तित्व का प्रतिलोम

दृष्टि पथ है अवरूद्ध/अपारदर्शी तमस्
क्षण क्षण परिवर्तित होता
विश्व और सृष्टि का परिदृश्य और घटनाचक्र
जीवन घूमता है अहर्निश तेज प्रवाह सा
मन उलझा रहता है धारा के चक्रवातो मे
जिसे मैं मानता हूँ स्वकीय वोध
वही है आज भगित, तिरस्कृत, निर्वासित और पराधीन
न मैं शेष बचा स्व/न अपनत्व
मेरा तो हर क्षण है बन्धित और बाधित
मेरे सरोकारो का लोक नही है मेरे पास
मेरे अभिप्रेतो की दृष्टि है कैद परकीय विश्व मे
परिधि की गोलाई मे घूमता रहता है मन
परिधि के बाहर है प्रेत और शून्य
परिधि भी कहाँ मेरी / यह तो है कारावास की परिधि
मुझे कैद कर दिया गया है परिधि के भीतर
ऊपर मे होते अत्याचार और आक्रमण
सहन करता रहता हूँ असहाय सा
परिधि के बाहर फला है तमस् का ससार
जहा आखेटीय मस्कृति के योद्धा हैं/वृत्रासुरी भाव और जिह्वा है
रक्त-प्यासे इरादे और मतव्यो का सागर है
नही कर सकता मैं पार इस प्रेतीय सागर को
असहाय सा बैठा देखता हूँ आकाश
आडी तिरछी रेखाओ के अर्थहीन बिम्ब
सोचता हूँ- क्या यही है जीवन की इयत्ता और अस्तित्व का उद्देश्य
नही- यह तो मात्र यत्रणा की कारा
अस्तित्व का प्रतिलोम और मेरा शून्य ।

मैं की अभिव्यंजला का आख्यान

संवेदनाओं में तपता है अब द्रवित फौलाद
अणु और विज्ञान के समीकरणों में
भूल गया युग जीवन का उदात्त रूप
साध्य तो है मानव और जीवन के उत्क्रान्तित प्रतिमान
किन्तु हो गये वे ही उपेक्षित और गौण
सोचनी होगी हमें पुन मानव की बात
करना होगा उसी का अभ्युदय और अभिषेक
वही तो है नियति का अह केन्द्र
फैले हैं किन्तु उसके चारो ओर विषाक्त सिन्धु
भीतर भी वह कहाँ है शुद्ध चेतना का
स्फटिक सा स्वच्छ

विकृत परछाइयो से आहत है मन
शून्य मे डूबता जाता है जीवन का पोत
श्रेयस् के स्तूप ढहते हैं अविरल
प्रेतो के हाथ छूते है गगन
घूर्णित हो रहा है मेरा मन
भाग्य की विडम्बना ही है यह कि
मैं-बोध का तात्विक अर्थ हो गया है सर्वथा क्षीण
अस्तित्व हो गया है अकिंचितता
अनस्तित्व होकर जीना होता है अपराध का प्रतिमान
किन्तु सुने कौन मन की बात का गूढ अर्थ
नही बन पा रहा हूँ मैं वह
चाहता हूँ जिसको दिन-रात
मेरे स्वप्नो के विश्व मे तो मानव ही महान्
विषाक्त विश्व सागर मे डूबते-डूबते
मैं हो गया निष्प्राण
मैं की अभिव्यजना मे मेरा सरोकार

करता मैं मेरी अभिव्यजना का विस्तरण
करता मैं मेरी अभिव्यजना का सृजित लोक
स्वदृष्टि और परदृष्टि को चीरकर
चला जाता मैं उस पार
है जहाँ विराट् सृष्टि का मगल घाट
आत्मवत् सर्वभूतेषु / अस्तित्ववत् सवसत्येषु
जीवन मे अभिव्यजित मैं का स्वप्न
विराट् सृष्टि मे मैं मेरा स्वाधीन अस्तित्व
उसी के लिए करता मैं शब्दोच्चार, मत्रोच्चार
जीवन मे आस्था का ढू ढता पथ
अस्तित्व के पक्ष मे करता मैं मेरी बात
सर्व-श्रेयसी छद विधान का मैं सहज शिल्प
आत्म सज्ञा का मैं विराट् मत्र

विश्व मे जागृत हो प्रज्ञा ज्योति
सवमगल के गान से गू जे नभ
क्षण क्षण हो महामगल का गर्भ
मानव हो स्वय ब्रह्मवत् सजक और विराट्

शिव, सत्य और सौन्दय की त्रिवेणी का
करता मैं विदग्ध विश्व मे आह्वान
अक्षयो भव मानव / अक्षयो भव
हो दिशा धवल रश्मि सी निर्भ्रान्त
यही है मेरी मैं की अभिव्यजना का आख्यान •